तीसरा] श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली [खण्ड तीसरा

श्री

स्वामी रामतीर्थ।

उनके सदुपदेश-भाग १५।

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

[प्र]ति २००० } —:#:— { मई १९२२
ज्येष्ट १९७९

मूल्य फुटकर कापी।

[सा]जिल्द ||=) } डाक व्यय रहित। { सजिल्द |||=)

सुख समाचार ।

बढ़िया कागज का दाम कुछ घट जाने से लीग ने विशेष संस्करण वाली जिल्द का वार्षिक शुल्क ६) रु० के स्थान पर ५) रु० कर दिया है, अर्थात् १) रु० घटा दिया है। जो सज्जन वर्तमान वर्ष का ६) रु० पेशगी शुल्क दे चुके हैं, वे १) रु० वापिस लेने के पूर्ण अधिकारी हैं। यदि वे उस रुपया से लीग की कोई पुस्तक मंगवाना चाहें तो मंगवा सकते हैं, या जिस रीति से अपना एक रुपया वापिस लेना चाहें ले सकते हैं।

मंत्री

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग

के० सी० बनर्जी के प्रबन्ध से
पं०अ०ओ ओरियन्टल प्रेस, लखनऊ में छपी — १९२२

* ॐ *

परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी महाराज

के

सदुपदेश जो आज तक छप चुके और जो शेष इस वर्ष के भीतर २ दीपमालिका तक प्रकाशित होंगे, उन सब की विषय-सूची पाठकों के लिये नीचे दी जाती है. और जिस व्याख्यान का अनुवाद अंग्रेजी भाषा से हुआ है उस का नाम यहां अंग्रेजी भाषा में भी दे दिया है:—

पहिला भागः—(१) आनन्द (Happiness within.) (२) आत्म विकाश (Expansion of self). (३) उपासना (४) वार्तालाप।

दूसरा भागः—(१) संक्षिप्त जीवन-चरित्र (२) सान्त में अनन्त (The Infinite in the finite). (३) आत्म-सूर्य और माया (The Sun of Life on the wall of mind). (४) ईश्वर भक्ति. (५) व्यावहारिक वेदान्त. (६) पत्र मंजूषा (७) माया (maya)।

तीसरा भागः—(१) राम परिचय. (२) वास्तविक आत्मा (The Real self). (३) धर्म तत्त्व. (४) ब्रह्मचर्य. (५) अकबरे-दिली. (६) भारतवर्ष की वर्त्तमान आवश्यकतायें (The present needs of India). (७) हिमालय (Himalaya). (८) सुमेरु दर्शन (Summeru-scene). (९) भारतवर्ष की स्त्रियाँ (Indian woman hood). (१०) आर्य माता (About wife-hood). (११) पत्र मंजूषा।

चौथा भागः—(१) भूमिका (Preface by mr. Puran in Vol. I). (२) पाप; आत्मा से उसका सम्बन्ध (Sin-

Its relation to the Atman or Real self). (३) पाप के पूर्व लक्षण और निदान (Prognosis & Diagnosis of Sin) (४) नकद धर्म, (५) विश्वास या ईमान (६) पत्र मंजूषा।

पाँचवाँ भागः—(१) राम परिचय. (२) अवतरण (A Brief of introduction by the late Lala Amir chand, Published in the fourth volume . (३) सफलता की कुंजी (lecture on Secret of Success, delivered in Japan). (४) सफलता का रहस्य (lecture on Secret of Success, delivered in America), (५) आत्म कृपा।

छठा भागः— १) प्रेरणा का स्वरूप (Nature of Inspiration). (२) सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग (The way to the fulfilment of all desires). (३) कर्म. (४) पुरुषार्थ और प्रारब्ध, (५) स्वतंत्रता।

सातवाँ और आठवाँ भागः—राम-वर्षा, प्रथम भाग (स्वामी राम कृत भजनों के नौ अध्याय) और दूसरा भाग (जिसके केवल तीन अध्याय दर्ज हैं)।

नवाँ भागः—राम वर्षा का दूसरा भाग।

दशवाँ भागः- (१) हज़रत मूसा का डंडा (The Rod of Moses , (२) सुधार, (३) उन्नति का मार्ग या राहे-तरक्की. (४) राम ढिंढोरा (The Problem of India), (५) जातीय धर्म (The National Dharma)।

ग्यारहवाँ भागः—(१) रामके जीवन पर विचार श्रीयुत पादरी सी.,एफ, एण्ड्रयूज द्वारा, (२) विजयनी आध्यात्मिक शक्ति (The Spiritual power that wins). (३) लोगों

को वेदान्त क्यों नहीं भाता (रिसाला अलफ से—राम का हस्त लिखित उर्दू-लेख) ।

बारहवाँ भागः— (१) सुलह कि जंग ? गंगा तरंग ।

तेरहवाँ भागः—(१) सुलह कि जंग, गंगा तरंग का अवशिष्ट भाग (२) आनन्द (३) राम परिचय ।

चौदहवाँ भागः— (१) भारत का भविष्य (२) जीवित कौन है (३) अद्वैत (४) राम ।

पन्द्रहवाँ भागः—(१) नित्य-जीवन का विधान (The Law of Life Eternal) (२) निश्चल चित्त (Balanced mind) (३) दुःख में ईश्वर (Out of misery to God within) (४) साधारण बात चीत (Informal Talks) (५) पत्र मंजूषा ।

जो शेष भाग आगे दिवाली तक इस वर्ष में प्रकाशित होंगेः—

सोलहवाँ भागः—(१) गैर मुल्कों के तजरुबे (अनुभव) (२) भारत के सम्बन्ध में अमरीकन लोगों से प्रार्थना (An appeal to Americans on behalf of India) (३) अपने घर आनन्द मय कैसे बना सकते हैं How to make your homes happy) (४) गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव (Married life & Realization) (५) मांस भक्षण पर वेदान्त का विचार (Vedantic idea of eating meat).

सतरहवाँ और अठरहवाँ भागः—बाल्यावस्था से ब्रह्मलीन अवस्था तक जो पत्र राम से लिखे गये, उनका संग्रह ।

कमीशन दर।

एकट्ठा खरीदने वाले ग्राहकों वा एजन्टों के लिये लीग ने निम्न लिखित दर कमीशन की निश्चय की है :—

(१) २५) रु० से कम के ग्राहक को कोई कमीशन नहीं दिया जायगा।

(२) २५) रु० से ५०) रु० तक के ग्राहक को १०) रु० सैकड़ा।

(३) ५०) रु० से ७५) रु० तक के ग्राहक को १२॥) रु० सैकड़ा।

(४) ७५) रु० से १००) रु० तक के ग्राहक को १५) रु० सैकड़ा।

(५) १००) रु० से ऊपर और २००) रु० तक के ग्राहक को २०) रु० सैकड़ा।

(६) २००) रु० से ऊपर और ४००) रु० तक के ग्राहक को २५) रु० सैकड़ा।

(७) ४००) रु० से ऊपर के ग्राहक को ३३) रु० सैकड़ा कमीशन दिया जायगा।

अपने २ प्रथम आर्डर के अनुसार यदि कोई ग्राहक अपने कमीशन की दर निरन्तर जारी रखना चाहे, तो उसे अपना दूसरा आर्ड निम्न लिखित रकम से कम न भेजना होगा :—

१००) रु० तक के खरीदार को कम से कम २५) रु०

१००) रु० से ऊपर और २००) रु० तक के खरीदार को कम से कम ३०) रु०।

२००) रु से ऊपर और ४००) रु० तक के खरीदार को कम से कम ५०) रु०।

और ४००) रु० से ऊपर के खरीदार को कम से कम १००) रु० का अपना दूसरा आर्ड २ भेजना होगा।

और प्रत्येक आर्डर के साथ २०) रु० सैकड़ा दाम पेशगी भेजने होंगे।

मंत्री

निवेदन ।

ईश्वरानुग्रह से आपकी सेवा में पन्द्रहवां भाग अपनी प्रतिज्ञानुसार भेजते हुए चित्त प्रसन्न हो रहा है। लीग का अपना प्रेस न होते हुए भी नियत समय पर भाग को प्रकाशित करके आप की सेवा में पहुंचा देना यह लीग के लिये कम गौरव का अवसर नहीं। पर आश्चर्य अब इस बात पर अवश्य हो रहा है कि जिस उत्साह और परिश्रम के साथ लीग अपना कर्तव्य पालन कर रही है, वैसे उत्साह के साथ राम-प्यारे ग्रन्थावली के ग्राहक बनाने में प्रयत्न करते दिखाई नहीं देते हैं। इस लिये लीग की उन से सविनय प्रार्थना है कि वे कृपया ग्रन्थावली के ग्राहक बढ़ाने में तन मन धन से सहायता दें, जिस से लीग अपने उद्देश्य पालन में कृतकार्य हो सके। नगर २ में ग्रन्थावलीके पहुंचाने की खातिर लीग ने एजन्टों वा बुक-सेलरों के लिये कमीशन की दर भी बढ़ा दी है। लीग की कार्य-कारिणी समिति की गत बैठक में जो दर कमीशन की निश्चित हुई है उस की सविस्तर सूचना सामने पृष्ठ पर अलग दे दी है, कृपया उसे पढ़ कर अपने २ मित्रों वा पुस्तक विक्रेताओं को सूचित कर दें, और यथाशक्ति ग्रन्थावली को नगर २ में पहुंचाने में पूर्ण सहायता दें। अन्त में महिला दर्पण के सम्पादिका के भ्राता श्री रामचरण जी मुज़फ्फरपुर निवासी का धन्यवाद किया जाता है कि उन्हों ने तीन अंग्रेज़ी व्याख्यानों का अनुवाद प्रेम पूर्वक करके भेजा है जो इस भाग में बहुत से संशोधन के बाद प्रकाशित किया गया है आशा है इसी प्रकार और राम प्यारे भी यदि राम के व्याख्यानों का अनुवाद राम प्रेम से प्रेरित हो कर भेजेंगे तो उसे भी ग्रन्थावली के भाग में स्थान देने का परिश्रम किया जायगा।

मन्त्री

विषयानुक्रम।

श्री स्वामी रामतीर्थ

लखनऊ. १९०५

स्वामी रामतीर्थ ।

नित्य-जीवन का विधान (नियम)

(पूर्व में कुछ एक पत्र अंग्रेजी भाषा में श्री स्वामी नारायण को लिखे गये थे, जिन को तत्पश्चात् स्वयं स्वामी राम ने प्रकाशनार्थ एक उत्तम शृंखला में विस्तार देकर संपादित कर दिया, और जो फिर अंग्रेजी जिल्द प्रथम के तीसरे भाग के आरम्भ में उक्त नाम से प्रकाशित हुए)
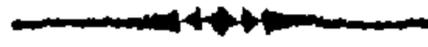
राम किसी मिशन (mission, खुदाई पैग़ाम वा पंथ इत्यादि) का दावा नहीं करता। यह कर्म सम्पूर्ण परमात्मा का ही है। हमें भगवान् बुद्ध तथा अन्य लोगों के आदर्श और उदाहरणों से क्या करना है, हमारे मनों को तो दैवी-विधान (Law) की प्रत्यक्ष आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। किन्तु भगवान् बुद्ध और ईसा मसीह भी अपने अनुयायियों और मित्रों से त्यागे गये। इस प्रकार सातवर्ष

के वनवास में से पिछले दो वर्ष बुद्ध भगवान् ने नितान्त एकान्त में व्यतीत किये, और तब एक दीप्तमान् ज्योति प्राप्त हुई (अनुभव हुई), जिसके बाद शिष्य लोग बुद्ध भगवान् के पास एकत्र होने लगे और बुद्ध भगवान् ने भी आनन्द से उन्हें अपने पास आने दिया। प्यारे! सदाशयवान् (शुभेच्छु) माननीय सम्मतिदाताओं के मत और विचारों से प्रभावित मत हो। यदि इन के विचार ईश्वरीय नियमानुकूल होते तो आज तक इन्हों ने हज़ारों बुद्ध भगवान् उत्पन्न कर दिये होते।

धीरे धीरे किन्तु दृढ़ता पूर्वक जिस प्रकार मधु में फंसी हुई मक्खी अपनी टांगें मधु से निकाल लेती है, इसी प्रकार रूप और व्यक्ति गत आसक्ति के एक एक कण को हमें अवश्य दूर करना होगा। सब संबन्ध एक दूसरे के बाद छिन्न भिन्न करने होंगे, सब बन्धन चट से तोड़ने होंगे, जब तक कि अन्तिम ईश्वरकृपा मृत्यु के रूप में आकर सारे अनिच्छित त्यागों की पूर्णाहुति न करदे।

दैवी-विधान (Law) का चक्र बड़ी निर्दयता से घूमता फिरता है। जो इस विधान (नियम) को आचरण में लाता है, वही उस पर आरूढ़ होता है, अर्थात् वही उस पर अनुशासन रखता है। और जो अपनी इच्छा को दैवेच्छा (अर्थात् दैवी-विधान) के विरुद्ध खड़ा करता है, वह अवश्य कुचला जाता है, और दारुण पीड़ाएं (Promethean tortures) झेलता है।

दैवी-विधान त्रिशूल है, यह क्षुद्र अहंकार (अहंभाव) को छेद देता है। जो जान बूझ कर इस त्रिशूल रूपी सूली पर चढ़ता है, उस के लिये यह जगत् स्वर्गवाटिका हो जाता है।

अन्य सब के लिये यह (जगत्) भ्रष्ट-स्वर्ग है। यह दैवी-विधान अग्नि है, जो सब के सांसारिक स्नेह को भस्म कर देती है, मूढ़ मन को झुलसा देती है, और इस से बढ़कर अन्तः करण को शुद्ध करती तथा आध्यात्मिक-रोग के सर्व प्रकार के कीड़ों को नष्ट कर देती है।

धर्म इतना विश्वव्यापक (सार्वलौकिक) है और हमारे जीवन से इतना मार्मिक संबन्ध रखता है जितना कि भोजन-क्रिया। सफल नास्तिक मनुष्य मानो अपने ही भीतर की इस पाचन विधि को नहीं जानता है। दैवी-विधान हमें छुरे की नोक के ज़ोर से धार्मिक बनाता है, कोड़े लगाकर हमें जगाता है। इस विधान से निस्तारा (छुटकारा) नहीं। दैवी-विधान सत्य है और अन्य सब मिथ्या है। समस्त रूप और व्यक्तियां दैवी-विधान के सागर में केवल बुलबुले से हैं। सत्य की व्याख्या ऐसे की गई है कि "सत्य वह है जो (एक रूप, एक रस) निरन्तर रहे, अथवा रहने का आग्रह करे" अब इस नाम-रूपमय संसार में ये सब सम्बन्ध, देहें वा पदार्थ, संस्थायें और सभायें कोई भी ऐसा नहीं जो इस त्रिशूल के विधान के समान सदा एक रस रह सके।

ये मूढ़ और अदूरदर्शी जीव इस आदर्श रूप विधान की अपेक्षा बाह्यरूपों (व्यक्तियों) को क्यों अधिक प्यार करते हैं? इस लिये कि अज्ञान के कारण उन को ये व्यक्तियां वा बाह्यरूप निरन्तर एक रस रहने वाले सत्य पदार्थ दिखाई देते हैं, और दैवी-विधान एक अस्पर्श्य क्षणिक मेघ (intangible evanescent cloud) भान होता है।

कठोर प्रहार और कष्टप्रद धक्कों द्वारा उनकी रक्षा हो सकती है, यदि वे उस पाठ को पढने लग पड़ें कि जो प्रकृति

माता उन्हें पढ़ाना चाहती है; अर्थात् "त्रिशूल (cross, सूली) या त्रिशूली (शिव) ही केवल सत्य है, और अन्य सब व्यक्तियां व प्रीति के पदार्थ क्षणिक, आभास रूप छाया मात्र, तथा मिथ्या प्रेत हैं। ये बाह्य प्रिय-अप्रिय, मधुर-कटु रस, भासमान सौंदर्य्य और अद्भुतता तो केवल नकाब (बुर्का वा ऊपर का पर्दा) हैं जिन्हें बिहारी जी (विलासी स्वरूप) ने हमारी आँखों को अन्ततः अपनी महिमा दर्शाने के लिये अपने मुख पर डाल रक्खा है"।

जब शत्रुमित्र के रूपों को हम सत्य मानते हैं, तब वे हमें धोखा देते और ठगते वा विश्वासघात करते हैं। किन्तु जब हम उन से बदला लेना शुरू करते हैं, तथा उन में नीच स्वभाव और निकृष्ट प्रयोजन (उद्देश) आरोपित करते हैं, तब हम दशा को पहिले से भी अधिक विगाड़ देते हैं। जो सत्यता केवल परमात्मा में है, उसे जब हम मोह के कारण अपने मित्रों में आरोपित करते हैं, तो यह उनके प्रथम विश्वासघात का कारण होता है। फिर जब हम क्रुद्ध होते हैं, तो इस घृणा से हम उन (शत्रु मित्रों के) रूपों में और अधिक सत्यता आरोपित करते हैं, जिससे अपनी पहिली भूल का हम और भी दृढ़ कर लेते हैं, और इस प्रकार अधिक दुःखों को अपने ऊपर बुला लेते हैं। खबरदार (सावधान)! यह त्रिशूल (संपूर्ण त्याग, शिव) जीवन का अन्तिम उद्देश्य वा ध्येय है। यह जीती जागती सच्चाई है, पत्थरों (स्थूल पदार्थों) से भी अधिक ठोस (concrete, प्रत्यक्ष वस्तु) है, और बहुत ठीक ही यह पाषाणलिंग से निरूपित वा प्रतिपादित की जा सकती है। प्रमादी मन को सुधारने के लिये यह (त्रिशूल) पत्थर से भी कठोरतर चोट लगाता है। इसलिये इसे निरन्तर स्मरण रखना नितान्त आवश्यक है।

मुसलमान और ईसाई जब इस दैवी-विधान वा परमात्मा को 'ग़य्यूर' (ईर्षालु, Jealous, غيور) और क़हार (क्रूर वा कराल, Terrible, قهار) कहते हैं, तो कोई गलती नहीं करते। निःसन्देह यह नियम किसी व्यक्ति विशेषका पक्ष करने वाला (वा लिहाज़ करने वाला) नहीं है। किसी मनुष्य को संसार की किसी वस्तु से चित्त लगाने दो और त्रिशूल रूपी प्रकृति का अनिवार्य्यतः क्रोध उस पर अवश्य ही घटित होगा। यदि लोग इस 'सत्य' के ग्रहण करने में सुस्त हैं, इसलिये कि उनमें ठीक २ अवलोकन की शक्ति थोड़ी है, तो वे प्रायः अपने व्यक्तित्व-सम्बन्धी बातों में उसी घटना में कारण को ढूँढना पसन्द नहीं करते, बल्कि अपने दोषोंके लिये दूसरों को दोष झट पट देने लग जाते हैं, और एक निष्पक्ष साक्षी की भाँति अपनी कोपवृत्तियों और भावनाओं तथा उनसे उत्पन्न होने वाले परिणामों पर विचार पूर्वक दृष्टि डालना जानते ही नहीं। धोखा हमें अवश्य मिलेगा जब हम इन बाह्य रूपों पर विश्वास करेंगे, या जब हम अपने अन्तः हृदय में इन मिथ्या पदार्थों और व्यक्तियोंको वह स्थान देंगे जो केवल एक मात्र सत्यके लिये उपयोगी है, या जब ईश्वर के स्थान पर हम मूर्त्तियों (बुतों, idols) को अपने हृदय-सिंहासन पर बिठलायेंगे। अध्यारोप अपवाद-न्याय (Method of agreement & difference) तो अनीश्वरीय असत्यता के नियम को बिना किसी अपेक्षा के स्थिर करता है।

कितनी बार ऐसा नहीं होता कि हम पूर्ण भद्र पुरुषों के वाक्यों (इक़ारों) पर चित्त लगाने से और उनमें ईश्वर से भी बढ़कर विश्वास रखने से उनको उनके वाक्यों के समान भी भद्र नहीं बने रहने देते? कितनी बार हम दैवी-विधान

को भुला देने वाला मोह अपने बच्चों के साथ करके उनकी मृत्यु वा नाश को निमन्त्रित नहीं करते ? कितनी वार हम अन्तः हृदयस्थ श्रद्धाको जो केवल ईश्वर (ईर्षालु, दैवी-विधान) के अर्पण करने योग्य है, अपने मित्रों के शरीरों में अर्पण कर के और उन (मित्रों) पर ही आश्रित होते हुए उन्हें विश्वास घातक नहीं बना देते ? जहां दैवी-विधान यह चाहता है कि प्रभात से पहिले (before the cock crows)* हम तीन वार से भी अधिक अपने गुरुओं को (ईश्वर से अतिरिक्त अन्य किसी ऊँच नीच सम्बन्ध से) अंगीकार न करें, वहां उनको अपने पर और (उनमें) अपनी श्रद्धा पर भरोसा दिला कर कितनी वार हम अपने जीवित गुरुओं को आध्यात्मिक उन्नति के शिखर से नीचे नहीं गिरा देते ?

कितनी वार अपनी स्त्रियोंपर हमारी हृदयासक्ति (heart dependence) गृहकलहा और उससे भी बुरे २ दृश्यों का कारण नहीं होती ? किसी भी वस्तु को आप ईश्वर से अधिक सत्य (महान्, serious) मानिये, और बस, दिव्य-प्रेम (ईश्वर भक्ति) अपने तीक्ष्ण कटाक्ष से आपको वेध देगा।

निन्दनीय (अनुचित, unworthy) प्रेम की बात तो अलग रहे, उन गोपिकाओं का दृष्टान्त लीजिये जिन्होंने अवतरित भगवान् की मोहनी आकृति पर अपना हृदय निछावर कर दिया था, किन्तु इतने पर भी उन्हें अपनी भूल निमित्त खून के भारी आँसू बहाने पड़े। शुद्ध प्रेम की मूर्त्ति सीता जी ने भगवान् राम के तेजस्वी रूप की सत्यता में निश्चय किया; तो उन्हें भी, अरे सीता जी को भी, अपनी भूल के लिये, अपने स्वामी (ईर्षालु, अमूर्त भगवान् राम, अर्थात् सत्य राम, सब के प्रभु) द्वारा घोर कानन में भटकाय जाकर प्रायश्चित करना पड़ा।

* (सेंट ल्यूकस की गोस्पल का अध्याय २२ देखो)

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद।
क्षत्रं तं परादाद्योऽ न्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद।
लोकास्तं परादुर्योऽ न्यत्रात्मनो लोकान्वेद।
देवास्तं परादुर्योऽ न्यत्रात्मनो देवान्वेद।
वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान् वेद।
भूतानि तं परादुर्योऽ न्यत्रात्मनो भूतानि वेद।
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद। इदं
ब्रह्म, इदं क्षत्रम्, इमे लोकाः, इमे देवाः, इमे वेदाः,
इमानि भूतानि, इदं सर्वम्, यदयमात्मा ॥ ७ ॥
(बृह० उप० अ० ४ ब्रा० ५ मं० ७)

अर्थः—ब्राह्मणत्व उसको परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र (किसी दूसरे के आश्रय) ब्राह्मणत्व को समझता है। क्षत्रियत्व उसे परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र क्षत्रियत्व को देखता है। लोक उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र लोकों को जानता है। देवता उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र देवताओं को जानता है। वेद उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र वेदों को जानता है। प्राणधारी उसको परे हटा देते हैं, जो प्राणियों को आत्मा से अन्यत्र देखता है। प्रत्येक वस्तु उसको परे हटा देती है, जो वस्तु को आत्मा से अन्यत्र जानता है। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये वेद, ये प्राणधारी, यह प्रत्येक वस्तु, जो है, यह सब आत्मा ही है। (श्रुति)

ये भासमान पदार्थ जो भोले प्राणियों को आकर्षण करते हैं, देखने में तो भगवान् कृष्ण की भोली मूर्ति के समान हैं। मन रूपी सर्प उनको झट निगलता जाता है; परन्तु भीतर पहुंचते ही वे पदार्थ अन्दर से छुरा चुभो देते हैं, मन रूपी

सर्प के उदर को फाड़ डालते हैं; और तब लोग चिल्लाते हैं—"अरे ! मेरा कलेजा फट गया ! मैं मरा, मैं मरा ! मेरा सर्वनाश होगया !!!" पर आप ने अपने को नामरूपों से ठगा जाने क्यों दिया ? आप केवल सत्य को प्यार (अंगीकार) कीजिये, केवल ईश्वर से लग्न लगाइये, भीतर (रोम २ में) उसे खूब धसाइये, ईश्वर को अपनाइये, ईश्वर के साथ ही रमण कीजिये, ईश्वर स्वयं हो जाइये, ईश्वर जैसा व्यवहार कीजिये। यही जीवन है। जो कुछ विश्वास्यता (faithfulness) और प्रेम इस संसार में है, उसे तब तक आप देख नहीं सकते जब तक उन्हें त्याग नहीं चुकते। ऐ मेरे प्यारों ! (निश्चय करो कि) एक मात्र ईश्वर सत्य है और अन्य सब मिथ्या है।

"ला इलह इल लिल्लाह।"

यह ठीक है कि मुहम्मद को लोगों ने गलत समझा है, और प्रायः उसका अनुसरण भी गलत किया है। किन्तु जो कोई सत्य (तत्त्व) को देख लेता है, वह सन्मान पूर्वक इस मत के आगे अवश्य सिर झुकाता है। यद्यपि यह मत एक पक्षी है, क्योंकि जो लोग इस सत्य (तत्त्व) में कि "ईश्वर से अतिरिक्त और कोई सत्य वस्तु नहीं" पक्का निश्चय न रखने के कारण सिसक सिसक कर मर रहे हैं, उनकी चिरस्थाई (चिरकालीन) और दुस्साध्य व्यथाओं का एक दम (तलवार से) अन्त कर देता है। वास्तव में हज़रत ईसामसीह भी यही शिक्षा देते हैं, बुद्ध भगवान् भी यही सिखलाते हैं, और निस्सन्देह हमारा, अपना प्रत्येक ऋषि एक न एक रूप में इसी वस्तु का उपदेश करता है। परन्तु इस से क्या ? उनकी शिक्षा और उपदेश अभी तक भी जीते न रहते, यदि वे श्रोतागण के निज-अनुभव में आकर उनका हार्दिक समर्थन न पाते, और यदि सब

युगों में ज्ञान के अनुरागियों, निष्कपट, सच्चे या शुद्धात्माओं ने समय समय पर अपने अनुभव में लाकर उनकी साक्षी न दी होती, या उनका स्पष्टीकरण और समर्थन न किया होता।

त्याग का नियम (विधान) एक पक्की सच्चाई है। कोई सारहीन (क्षणिक) कल्पना (flimsy phantom) नहीं। राष्ट्रों के राष्ट्र, इन पैगम्बरों, अवतारों, और नेताओं के केवल काल्पनिक भ्रमों से मोहित नहीं हो सकते थे। शताब्दियों की शताब्दियाँ विचारे बुद्धि-भ्रष्टों की केवल कल्पना से ही नहीं बीत सकती थीं।

अपने दुःखों के असली कारण को न जान कर-जो कि दैवी-विधान के प्रतिकूल चलना है-लोग अपने रोग के बाह्य लक्षणों को अर्थात् बाह्य दशाओं को दोषी ठहराने लग जाते हैं। जिस प्रकार अस्पष्ट स्वप्न (misty dreams) विस्मृति के अर्पण कर दिये जाते हैं (अर्थात् नितान्त भुला दिये जाते हैं), उसी प्रकार लोगों के अच्छे-बुरे आचरणों और संवादों (शब्दों) को अपने चित्त से नितान्त धो डालना चाहिये। स्वप्न चाहे भयंकर हों, चाहे मधुर, हम उनके साथ लड़ने या उनके समाधान करने का यत्न नहीं करते, बल्कि उलटे हम अपने पेट को ही ठीक करते हैं। इसी प्रकार अच्छे बुरे लोग जो भी मिलें, उनकी हमें पूर्ण उपेक्षा करनी चाहिये, और अपनी आध्यात्मिक दशा उन्नत करनी चाहिये। अपने और ईश्वर के बीच में इन भासमान् अनिष्टों वा भाग्यों को खड़ा न होने दीजिये। कोई अपमान और दोष इतने भारी नहीं कि जिनको क्षमा प्रदान करने से मुझे सन्तोष मिले।

किसी वस्तु को ईश्वर से बढ़कर मत समझो, ईश्वर के बराबर भी किसी का मूल्य मत करो। निन्दा-स्तुति और

व्याधि सब के सब एक समान घातक हैं, यदि हम अपने को इनके अधीन समझें। अपने को ईश्वर मान(निश्चय)करो, और अपने ईश्वर भाव में आनन्द के गीत गाओ। निन्दा-स्तुति दोनों को इस प्रकार देखो जिस प्रकार राम अपने शारीरिक रोगों को ईश्वर के दरबार के केवल किंकर समझता है, जो (किंकर) सर्वोच्च शासन के अधिकार से कहते हैं "इस घर (देहाध्यास) से एक दम बाहिर निकल जाओ।" ये (किंकर) हमारी आज्ञा पालन करते हैं जब हम निज स्वरूप के राज-सिंहासन पर बैठते हैं, और वे कोड़े लगाते वे पेट में छुरा भोंकते हैं जब हम इस अन्ध-कूप (देहाध्यास) में प्रवेश करते हैं।

वे शासन भी जिनके नाम मात्र के नियम (क़ानून) त्रिशूल (सूली) के ईश्वरीय नियम के अनुकूल नहीं हैं, अपना नाश करलेते हैं। शाइलॉक (shylock) के समान व्यक्ति गत अधिकार पर ज़ोर देना, इस वा उस पदार्थ को अपना समझना, स्वत्व वा अधिकार का भाव रखना, "क़ानून हमें यह दिलाता है" (the law grants it) ऐसा कह कर उस दैवी-विधान (ईश्वरीय नियम) के विरुद्ध चलना है कि जिसके अनुसार जो कुछ हक़ (अधिकार) हम लोगों का है वह केवल 'सत्य' (ईश्वर) है, और अन्य सर्व अधिकार व्यर्थ (wrong) हैं। यदि कोई अन्य व्यक्ति इस सिद्धान्त (principle) को नहीं मानता है, तो कम से कम संन्यासी को तो अवश्य इसे अपने आचरण में लाना चाहिये।

दैवी-विधान (ईश्वरीय नियम) सर्व व्यापी है, प्रत्येक का परम आत्मा है, और इस अर्थ में राम है। तथापि यह

लघु आत्मा (व्यक्तित्व) को अवश्य ठोकरें मार कर निकाल देता और नष्ट कर देता है। यह (विधान) बड़ा निर्दयी है, परन्तु इसकी निर्दयता प्रेम का सार है, क्योंकि इस लघु-आत्मा (तुच्छ अहंकार) की मृत्यु में ही असली अपने आप (परमात्मा) का और नित्य जीवन का पुनरुत्थान है। जो कोई तुच्छ अहंकार को रखकर निज स्वरूप (king self, परमात्मा) के विशेष अधिकारों को चाहता है, वह मानो वृथा भिमान (vanity) के शिखर पर गिद्धों का भक्ष्य हो जाता है। वेदान्त की स्वतंत्रता (मुक्ति) कुछ इस परिच्छिन्न देहात्मा (व्यक्तित्व और देह) के लिये दैवी-विधान से छुटकारा नहीं है। यह तो God (ईश्वर) को ठीक उलटा देना, अर्थात् dog (श्वान) बनाना है*। लाखों प्राणी इस भूल के कारण प्रति घड़ी नाश होते हैं। इस दैवी-विधान के क्रम को मूर्खता पूर्वक उलटा देने से हज़ारों मस्तिष्क निराशा में डूब रहे हैं और लाखों हृदय प्रत्येक मिनट टुकड़े २ हो रहे हैं। स्वयं दैवी-विधान ही हो जाने से विधान से छुटकारा मिलता है, यही शिवोऽहं का अनुभव (साक्षात्कार) है।

जो बाह्य रूपों (आकारों) की नींव पर विश्राम करता और घटनाओं तथा अलंकारों (facts and figures) के भरोसे रहता है, ऐसा मूढ़मति फेन पर घर बनाता है, और स्वयं उसके साथ डूबता है। पर वह व्यक्ति उस अचल शिला (पर्वत) पर अपना स्थान बनाता है जिस के हृदय की तह में "ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या (ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है)

---

*GOD (गौड) का अर्थ है ईश्वर। इस अंग्रेजी शब्द के अक्षरों का क्रम उलटा देने से शब्द Dog (डौग) बन जाता है जिसका अर्थ है कुत्ता, कूकर वा श्वान।

और दैवी-विधान एक जीती जागती शक्ति है।" जमा पड़ा है।

लोग इस शरीर को पौलिसी-बाज़, स्वार्थी, गर्वपूर्ण, मदोन्मत, अथवा अन्य जो कुछ चाहें आनन्द से कहें; चाहे जिसे लोग अपमानित, पददलित और मृतक हुआ कहते हैं वैसा इस को करदें, मुझ (सर्व के आत्मा) को इस से क्या?

I am Truth, the inevitable.
I am Law, the inexorable.
To know Me is to obey me.
To obey Me is to prosper.
Oppose Me, it will not annoy Me.
Ignore Me, I cannot be anxious.
But will calmly destroy him who slights.

मैं अनिवार्य सत्य हूं,
मैं अनम्य (कठोर चित्त) विधान हूं,
मुझे जानना मेरी आज्ञा का पालना है,
मेरी आज्ञा का पालना समृद्धि द्वार है,
मेरा विरोध करो, मैं क्षुब्ध न हूंगा,
मेरी उपेक्षा करो, मैं उत्कंठित न हूंगा,
किन्तु शान्ति से अपमानकारी का नाश कर दूंगा,

यह खाली धमकी (गीदड़भभकी) नहीं है। यह अत्यंत भयंकर (भीषण) सत्य है।

हमें कमसे कम उतना खयाल और सत्कार तो सत्य (ईश्वर, ईश्वरीय नियम, God, Law,) के लिये अवश्य रखना चाहिये जितना कि हम लोगों के भावों वा विचारों के लिये रखते हैं। यदि दैवी-विधान के प्रति विश्वासनीय सच्ची और निष्कपट भक्ति के कारण लोगों के हृदय टूटते (चोट खाते)

हैं, तो इस के लिये हम ज़िम्मेवार नहीं होसकते। हमारे लिये तो सर्व प्रकार से ईश्वरीय नियम का भंग न करना की गुणा अधिक चिन्तनीय होना चाहिये। जिन को हम अपना घनिष्ट संम्बन्धी वा प्यारा कहते हैं, उन लोगों के भ्रम के अधीन होकर दैवी-विधान के विरुद्ध होना अपने और उन के सिर पर आफत बुलाना है। ईश्वर से अधिक निकटतर कोई वस्तु नहीं है, और ईश्वर (सत्य, दैवी-विधान) से बढ़कर प्रिय कोई होना न चाहिये।

त्वयं सोम प्रते तव मनस्तनुषु विभ्रतः (यजु० वेद)

अनु०-For Thee, for Thee alone, O Lord! O Law,!
I was keeping the mind in my body.

तव हेतु, एक मात्र तव हेतु-
हे भगवान्, हे विधान !!
इस निज मन को मैं
निज शरीर में रखता हूं।

वैदिक काल में विशेष अवसरों पर, कुमारियां प्रज्वलित अग्नि की चारों ओर कर जोड़े एकत्र होकर प्रदक्षिणा करती हुई यह गीत गाया करतीं थीं।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पति वेदनम्।
उर्वा रुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥

अनुवाद—उस सुगन्धिमय, सर्व-द्रष्टा, पति-वेदन (पति को जानने वाले) की पूजा में आओ हम सब निमग्न हों। भूसी के (भीतर से) दाने की तरह हम लोग यहां के बन्धन (पितृ गृह) से मुक्त हों, किन्तु वहां (पति गृह) से कभी न कभी न (मुक्त हों)।

बिछुड़ती दुल्हन वतन से है जब।
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥
कि फिर न आने की है कोई ढब।
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥

प्राचीन आर्य कुमारीयों की वह प्रार्थना राम के हृदय पटल से गम्भीरता पूर्वक निकल रही है, और उस के साथ अश्रु, अरे अश्रु, झड़ी बांधे वह रहे हैं।

हे भगवान्! हे दैवी-विधान हे! सत्यस्वरूप! हमारे इस हृदय और मस्तिष्क (दिल और दमाग) में आप से अतिरिक्त यदि कोई संबन्ध घर करता हो, तो इन दोनों (दिल और दमाग) को तत्क्षण विदीर्ण कर दो। यदि आप से अतिरिक्त कोई और भाव (ख्याल) इन नसों और नाड़ियों में प्रवाहित हो, तो उसी क्षण रुधिर को वहीं जम जाने दो।

और श्रुति—

अहम् जानि गर्भ धमा।
त्वम् जासि गर्भ धम्॥

भावार्थ-हे भगवन्! स्त्री जैसे पुरुष का ज्ञान प्राप्त करती है,वैसे मैं ज्ञान प्राप्त करूंगा,मैं तुम्हें अधिकतर निकट आकर्षित करूंगा, मैं तुम्हारे शरीर (तन) का गुह्य रस (Secret juice) और तुम्हारा अधर पान करूंगा। ऐ स्वतंत्रते! ऐ दैवी-विधान!! मैं तुम्हें अपने भीतर खूब धारण करूंगा।

क्या राम का विवाह त्रिशूल, सत्य (तत्त्व) और दैवी-विधान से नहीं हो चुका, जो उस से वेश्या के समान और संबन्धों और स्नेहों की आशा की जाती है?

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।

यह कोई अन्ध वेग (आवेश) नहीं है, और न किसी को हानि पहुंचाने की स्वार्थमयी पौलिसी (नीति) है, क्यों? भला निर्दोष राम ने क्या विगाड़ा है जो तुम उसे व्यक्ति गत सम्बन्धों की परिच्छिन्न सीमा के भीतर खींचना चाहते हो? उसे छोड़ दो, कृपया छोड़ दो (Spare him), अपने कुशल के लिये उसे छोड़ दो, उसे अकेला रहने दो (Leave him alone)। इसी में तुम्हारे देश का और मानव जाति का कल्याण है। क्या तुम यह अनुमान करते हो कि राम के शरीर की यदि तुम आदर पूर्वक हिफाज़त (रक्षा) न करोगे, तो वह एकान्त में मृत्यु को प्राप्त हो जायगा? नहीं, ईश्वर सत्य है, और ईश्वर में निमग्न जीवन (Life in God) कोई कष्ट भान नहीं करता; और यह शरीर जब तक ईश्वर का कार्य पूरा न कर लेगा, तब तक इस का पात नहीं हो सकता।

किसी के पवित्र व्रत में छेड़ छाड़ (हस्तक्षेप) करना अच्छा नहीं है। वह अपने और अपने व्रत (मनोभाव, ideal) के बीच किसी को, नहीं नहीं, वल्कि मृत्यु तक को भी नहीं खड़ा होने देगा। नास्तिकता की दृष्टि से अधीत इतिहास द्वारा प्राप्त भये भावों वा विचारों (notions) के अनुसार कोई उस (राम) के चरित्र को खैंचने वा घटानेका यत्न न करे। इस भासमान् राम के प्रति अपने सत्कार, सन्मान और प्रीति (भक्ति) को परे रक्खो। इनसे असली राम (जो सबको अपना आप वा आत्मा है) का अपमान है। परे हटो। नामरूपों के स्वप्न से जागो। जिस प्रकार दैवी-विधानानुसार जीवन द्वारा राम ने उदर के अजीर्ण (dyspepsia) को दूर कर दिया है, इसी प्रकार देह-अध्यास और व्यक्तित्व के भ्रम को दूर करो। निज स्वरूप के तीक्ष्ण तेज को विष्या

साक्ति (इन्द्रियानुराग) पर केन्द्रीभूत (focus, एकत्र) कर के उनको जला डालो। अपने चित में सांसारिक संस्कारों को किञ्चित् जगह मत दो। और उसे सदा असली (वास्तविक) राम से पूर्ण रक्खो।

बर हरचिः जुज़ दिल्बर बुवद।
अज़ शहरे-दिल बेरूं कुनम॥

अर्थः-और अपने प्यारे के सिवा जो भी कोई ख्याल होता है उसे मैं अपने दिल के नगर से बाहिर करता हूं।

क्या ईश्वर कम से कम उतना मधुर नहीं, जितना कि विषयाभोग (इन्द्रिय-विषय)?

लोग ईश्वर को प्रेम करने में हिचकते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि संसार की प्रीति के झूठे पदार्थों के समान ईश्वर से (प्रेम का) कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। यही मूर्खताभरा अज्ञान है जो उन्हें भ्रममें डालता है। ऐ प्यारे! तत्क्षण ही, नहीं, नहीं तुम्हारी छाती के साथ साथ ही उस (परमात्मा) की छाती प्रति-संवेदन में (in responsive impulse) धड़कती है।

इन बाहिर के शत्रु-मित्रों में उनके आचरण का कारण मत ढूँढो। वास्तविक कारण तो एक मात्र तुम्हारे निज स्वरूप के आश्रित है (अर्थात् ठीक २ कारण उसका तुम्हारे भीतर होता है)। वहां देखो।

जिस प्रकार एक नन्हा पक्षी, जो अभी उड़ना सीख ही रहा हो एक पत्थर वा टहनी को छोड़कर वैसे ही दूसरे आधार पर जा बैठता है, फिर उसे भी छोड़ तीसरे पर, तीसरे से चौथे पर जा टिकता है, किन्तु भ्रामक इन पदार्थों (आश्रयों)

को नितान्त त्याग कर ऊँची वायुमें उड़ता नहीं है; इसी प्रकार आत्मज्ञान में नव प्रवृत्त पुरुष (नवीन जिज्ञासु) जब अपने चित्त को एक वस्तु से निरासक्त, या किसी व्यक्ति विशेष से उपराम करता है, तो तत्काल किसी दूसरी वस्तु के आश्रित हो जाता है, उसके बाद किसी अन्य वैसी ही वस्तु में आसक्त हो जाता है, किन्तु कोमल काई और तिन्का (क्षणभंगुर पदार्थों) का आश्रय नहीं छोड़ता, और अपने हृदय से सारे संसार का त्याग नहीं करता है। अनुभवी ज्ञानी किसी सांसारिक पदार्थ की अन्यत्र बेवफाई (निस्सारता, विश्वासभंग) को अपने अनन्त स्वरूप में कूद पड़ने का सोपानशिला बना लेता है। बाह्य अनुभव के प्रत्येक अंश को अनन्तस्वरूप में कूद जाने का अवसर बनाना ही धर्म की निपुणता (कौशल, साधन, art) है। ये भासमान पदार्थ सभी एक ही प्रकार के हैं, इस कारण जहां वह एक पदार्थ का बाहिर से त्याग करता है, वहां तो उस त्याग को वह सब पदार्थों के आन्तरिक त्याग का चिन्ह या संकेत बना लेता है।

शोचनीय और वज्रवत् मूढ वह अवश्य होगा जो हृदयवेधी तत्त्व को ऐसा नहीं पहचानता कि त्रिशूल——स्वार्थपरता व्यक्तित्व की मृत्यु ही - एक मात्र जीवन का नियम (नित्यजीता रहने का विधान) है। त्रिशूल सब व्यक्तित्व को परे हटा देता है। व्यक्तित्व (अहंकार) का दूर करना ही नित्य जीवन का पुनरुत्थान (प्रादुर्भाव) है। चिरञ्जीव रहो, आशीर्वाद।

जीवन में मृत्यु—जब राम लाहौर से चला, उन दिनों विष्णु पुराण, जो अद्वैत वेदान्त का एक बड़ा ही (सुस्पष्ट) ग्रंथ है, उस का फारसी भाषान्तर वह पढ़ रहा था।

विष्णु पुराण के इसी फारसी भाषान्तर का लैटिन अनुवाद है जिस का उल्लेख एमर्सन, थोरो और उन के ही जोड़ तथा प्रवृत्ति के अन्य लोगों ने अपने लेखों वा ग्रन्थों में भारी उत्साह के साथ किया है। पञ्जाबी विष्णु पुराण भी इसी फारसी रचना का भाषान्तर है। बाबा काली कम्बली वाले का अनुभव-प्रकाश भी इसी पञ्जाबी विष्णु पुराण का संशोधन वा परिवर्द्धन है। यह वह ग्रंथ है जो स्पष्ट करता है कि मनुष्य कितने२ उच्च शिखरों पर रहा करता था। और इस के पृष्ठों में हम उस (बाबा काली कम्बली वाले, पुस्तक कर्त्ता) के आन्तर जीवन की भी झलक पाते हैं। यह उन क्रोड़ों दाम वाले कामों का रहस्य है कि जो काम आज उस एक के नाम से चुप चाप हो रहे हैं, जिस के समस्त वस्त्र और घर केवल एक काला कम्बल था, जो न तो बड़ा पण्डित (विद्वान) ही था, और जो इस डर से कि मैं किसी एक परिवार पर भार न जान पड़ूं द्वार २ से मधुकरी माँग कर खाया करता था। आज बाबा काली कम्बली वाले के नाम पर प्रचण्ड वेग वाली (tempestuous) नदियों के ऊपर पुल बांधे जारहे हैं, सड़कें निकाली जारही हैं, धर्मशालायें बनाई जारही हैं. अन्न और वस्त्र (ग्रीवों में) बांटे जारहे हैं, विद्या दान दिया जारहा है. और मैदानों की जलती भुनती बालु पर तथा हिमालय की ऊंची शिखरों पर बेकारों को काम दिया जारहा है।

मनसूबों और पौलिसियों (plans & policies-युक्तियों व कल्पनाओं) से धुंआ और धुँवे से बढ़कर और कुछ नहीं सिद्ध होता। सच्चा काम सांसारिक उपायों (व चिन्ताओं) से नहीं होता; ईश्वरीय जीवन द्वारा ही होता है। कुछ लोगों के लिये भीड़ के बीच अति प्रवृत-जीवन दिव्य जीवन

बनाने का अज्ञात (unconscious) सहायक होता है; कुछ के लिये एकान्त-सेवन ज्ञात (conscious) साहाय्य (साधन) है; कुछ के लिये विपत्तियां बड़ी सामयिक आशीर्वाद वत् होती हैं; कुछ सज्जन का हृदय पुस्तकें लिखते समय प्रभू की लेखनी से प्रभावित होता है (वा हृदय पर प्रभू की लेखनी चुटकी भरने लग जाती है); कुछ लोग व्याख्यान देते देते अपनी भीतरी अस्वच्छता (कालुष्य) को खो देते हैं, और प्रभु का प्रकाश उनके भीतर से चमकने लगता है; कुछ लोग घमसान-युद्ध में जुटे अपनी छाती को गोलीयों का निशाना बनाते हुए देह-अध्यास त्याग देते हैं, और संसार में वीर पुरुष प्रसिद्ध होते हैं; कुछ लोग कला-कौशल में निरत हो अक्षय सौन्दर्य को प्राप्त होते हैं। यहाँ तक कि चोर भी घर में सेंध लगाते समय यदि सफल होता है तो याद रखो (Mark ye!) उसे जितनी कुछ सफलता मिलती है वह सब उसके उसी सकंप,अकथ्य,शब्दविहीन(wordless) और बिना विचारे आत्मसमर्पण की अवस्था को प्राप्त होने से और ऐसे ही अज्ञात अनन्त स्वरूप में पूर्ण निष्ठा और स्थिति (Suspense) पाने के कारण से होती है। और जो उसके कर्म की दुष्टता है, अर्थात् भासमान सम्पत्ति को जो सत्य मानना है, ऐसे दुस्साहस के लिये वह अवश्य अपने शिर पर दैवी-विधान का कोप बुलाता है।

जिस परिमाण से हम जीवित हैं, अर्थात् सर्व रूप (परमात्मा) में मृतक (निमग्न, dead in the all) हैं, उसी परिमाण से कार्य्य पूर्ण होता है। यह जीवन अर्थात् (तुच्छ अहंकार की) मृत्यु ही काम पूर्ण करती है न कि हमारा एकान्त सेवन, समाज, उपाय और युक्ति। मूर्ख

जीवनी-लेखक (biographers) बाह्य विशेषणों व आडम्बरों को ही देखते हैं, और सफलता के असली तत्त्व (मूलकारण) की उपेक्षा करके पूर्णकार्य (निष्पत्ति) का श्रेय कभी लेखन-शैली को देते हैं, तो कभी अनुयायिओं की संख्या को, मानो जिस वृक्ष के तले बैठे मैं लिख रहा हूं, उस पर जो जो पक्षी बैठे हैं उनके आधीन मेरे कार्य की सफलता या असफलता है । हमारे सुअवसर और स्थितियां कोई चीज़ नहीं हैं। वह प्राचीन ऋषि ठीक देखता है, जब योधा की विजय का कारण केवल आन्तर (इन्द्र) और बाह्य (वरुण) देवता को बतलाता है।

सुदा समिन्द्रावरुणावंसावतम्। (ऋक् वेद)

प्रति दिन हम अपनी आँखों के सामने इसे देखते हैं जैसा कि बुल्लाशाह ने कहा है कि चिड़ियाँ बाज़ों को निगलती हैं (Sparrows vanquishing eagles), अर्थात् हमारे अति-प्रिय और होनहार (आशा जनक) बुदबुदे (असार आडम्बर) फटते हैं, और हज़रत ईसा के शब्दों में, हमारी फेंकी हुई (rejected) ईंटें विशाल भवनों (उच्च महलों) की नींव के पत्थर की जगह सुशोभित (glorified) होती हैं। भास-मान परिस्थिति पर किसी प्रकार की निर्भरता या सांसारिक बुद्धि (चतुरता) हमारी सफलता (विजयों) में किञ्चित भी कारण नहीं होती। हमारे समस्त संबन्ध, मित्रतायें, सम्पत्तियें, आशायें, प्रतिज्ञायें और अन्य साधन (अर्थात् मानो हमारा जगत्) केवल कोरा धोखा और मिथ्या गूढ़ा-भिमान मात्र हैं। उनके तुच्छ (अकिञ्चिता) दर्शाने के लिये श्री सुरेश्वराचार्य या श्री शंकराचार्य्य की सी सूक्ष्मबुद्धि की आवश्यकता नहीं। जिनकी आँखें हैं उनके लिये प्रत्येक थोड़ा

सा अनुभव भी भयंकर तोप के समान वेदान्त की गर्जना में यों गर्जता है।

तत्त्वमस्यादि वाक्यानां स्वतः सिद्धार्थ बोधनात्।
अर्थान्तरं न संद्रष्टुं शक्यते त्रिदशैरपि॥

अर्थः—तत्त्वमसि आदि वाक्यों के स्वतः सिद्ध अर्थ जो हैं उनके बोधन से अतिरिक्त अन्य अर्थ देवता लोग भी नहीं कर सकते। अर्थात् यदि देवता लोग भी अपने स्वार्थ में आकर तत्त्वमसि आदि वाक्यों के अर्थ मोड़ तोड़ से कुछ का कुछ करना चाहें तो वह नहीं हो सकता, क्योंकि इन वाक्यों के अर्थ स्वतः सिद्ध हैं।

हमारे महात्मापन, सुधारकपन, सम्मान, पद, संबन्ध, सब के सब गतरात्रि के स्वप्नों, बीते हुए जन्मों, मेघाकारों, संध्या के प्रेतों और रोगी मस्तिष्क के विचारों के बेताल (कल्पित भूत-पिशाच) से अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। जब हम राम (ईश्वर) से प्रतिकूल (out of tune, विच्छिन्न) हो जाते हैं, तब हमें कोई मार्ग नहीं दीखता, हम दैवी-विधान से च्युत होते हैं, और हमें तब दुःख उठाना ही पड़ता है। जब हम ईश्वर में तन्मय होते हैं, तब ठीक उपाय, ठीक प्रवृत्ति ठीक प्रवाह आप ही आप हमारे हृदय में उठते हैं, और हमें विभवपूर्ण भूप्रदेशों (landscapes), पर्वत के दृश्यों, शान्ति, समृद्धि और पवित्रता के निर्झरों (स्रोतों) के पास पहुंचाते हैं। अथवा (यों कहना चाहिये कि) हमारे भीतर आनन्दमय तेज (ज्ञान-प्रकाश) स्वयमेव जीवन और प्रेम को हमारी ओर आकर्षित करता है।

यह अहंकार की वलि का पाठ वैदिक काल की जटिल, भव्य और प्रभाव शाली यज्ञ-विधियों की तैह में छिपा हुआ है। मृत्यु में जीवन का विधान (The Law of Life in Death) मुझे इतना ही कठोर और ठोस (संसार) सत्य जान पड़ता है, जितना कि प्राचीन ऋषियों को रुद्र। इस की तनिक उपेक्षा करो कि घायल करने वाले तीर तुम्हारी वगलों और छाती में जा चुभते हैं।

नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवेनमः।
वाहुभ्यां उत ते नमः॥

अर्थः—हे रुद्र (अर्थात् दैवी-विधान)! प्रणाम है तुम्हारे कोप (रोप) को, प्रणाम है तुम्हारे अमोघ वाणों को; प्रणाम है तुम्हारी अथक वाहुओं को।

हम लोगों के प्रत्येक छोटे २ अनुभव में सारा इतिहास छिपा पड़ा है। हम लोग उसे पढ़ते नहीं। यदि हम उचित मूल्य दें, अर्थात् देहाभिमान (local self) को दूर करके साक्षात् ईश्वर को अपने शरीर भीतर से कार्य्य करने दें, तो वुद्ध भगवान् या हज़रत ईसा होजाना उतना ही सहल है जितना कि निर्धन पाल (Paul) वने रहना। एक ही कोष (म्यान) में दो तल्वार हम नहीं रख सकते। यदि हम लोग वाहर से प्राप्त भये निन्दा-स्तुति में विश्वास न करने की शक्ति अपने भीतर उपार्जित करलें, यदि हम कार्य करने के ज्वर से मुक्त हो जांय, यदि जीतना व विजय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य न हो, यदि सत्य के उपदेश की अपेक्षा स्वयं सत्य वनने में हम अपनी शक्ति अधिक लगायें, यदि हम (अपने कार्य्यों के वीच) उतना ही न्यून श्रेय ले कर कार्य किया करें जितना

कि सूर्य सर्वदा चमकने में लेता है, तो ईश्वरों के भी अधीश्वर (स्वामियों के भी परम स्वामी) हम हो सकते हैं। जिस क्षण हम लोग अपने विषय में दूसरों की बातों पर विश्वास करना आरम्भ करते हैं, उसी क्षण सब कुछ (कर्म, क्रिया इत्यादि) निष्पन्द रूप हो जाता है। दुन्या नहीं है। संसार नहीं है। और सांसारिक जीवों की बातें भी कुछ नहीं है। ईश्वर ही एक मात्र सत्य है।

कोई कोई समझते हैं कि दुःख दर्द (Pain) चारित्रोन्नति (अर्थात् चित्त शुद्धि) के लिये ऐसे ही आवश्यक हैं जैसे कि आग स्वर्ण की शुद्धि के लिये। विना प्रयास के प्रकृति आगे बढ़ने नहीं देती। शायद आज पर्यन्त बराबर ऐसा ही होता आया है। परन्तु क्या यह भी कोई युक्ति (कारण) है कि इसी से सदा ऐसा ही होता रहे। यह सत्य है कि कोई भी रसायन (chemical) विना नवजात् अवस्था (Nascent state) में से गुज़रे के कार्य्य नहीं कर सकता। बीज अपने तत्त्व में परिघटित (through reduction into the substance) होकर उगता है। द्रव-दशा (melting point) में प्रवेश कर चुकने पर ही धातुओं को पीट कर जोड़ा जा सकता है। बाहरी दिखावट और भावों से युक्त मनुष्य प्रत्यक्ष आशाओं और उज्ज्वल भविष्य (प्रत्याशाओं, prospects) से उत्तेजित होकर व्यक्ति गत रूपों में अपना विश्वास जमाता आगे बढ़ता तो है, किन्तु तुरन्त ही वह अपने सिर पर कड़ी चोट या माथे पर भारी मुक्का (घूंसा) खाता है। चोट उस के चित्त को पिघला कर उसे पूर्व आरम्भिक अवस्था पर पहुंचा देती है, और इस प्रकार जीवन की शर्त्त पूरी होजाने पर सफलता उस के चरण छूने

आजाती है। चाहें रपोर्ट (पुस्तकों में वर्णन) कुछ ही क्यों न हों, यदि दैवी-विधान वास्तव में दैवीविधान है, तो बिना ईश्वरादर्श को किसी प्रकार भूले या 'जीवन में मृत्यु' के मार्ग से च्युत हुए, के हज़रत ईसा को कदापि कष्ट उठाना नहीं पड़ सकता था। हां पीड़ा भरे अत्याचार ने उसे तुरन्त सावधान कर दिया, और प्रत्यक्ष शूली पर चढ़ने से पहले कुछ घंटों तक कालावच्छिन्न स्वरूप (Timeless All) में अहंभाव के विलीन (self-crucifiction) रहने ने उसे सदा के लिये जीवित (अमर) बना दिया। परन्तु यह ज़रूरी नहीं कि उक्त पीड़न और दुःख के अनन्तर सफलता और आनन्द का आगमन ही हो; प्रायः केवल एक दुःख ही विपत्तियों की पंक्ति (ट्रेन) के आने की घोषणा दे देता है, और इसीसे कहते हैं कि कोई दुःख अकेले नहीं आता misfortunes never come singly)। अगर एक ही विपत्ति की चेतावनी से हम शुभ अवस्था में चेत जायें अर्थात् जग पड़ें, तो जीवन और ज्योति का प्रकाश (उजाला) तत्काल हम पर आ पड़ता है, किन्तु यदि प्रारम्भिक दुःख की सर्दी हमारे नियम-भंग (विधान-प्रतिकूलता) को और भी बढ़ा दे, तो हम कठोर तर विपत्तियों को बुला लेते हैं। अत्यन्त कठोर, एवं संभवतः गुह्य दैवी-विधान के न समझे जाने व पालन होने से यह कलह अवश्य जारी रहता है, और हमारे शिरों पर मुक्के और चोटें खूब बरसाता है। (इन चोटों से) केवल वही बच निकलते हैं जो योग्यता की एक मात्र शर्त—"अकथनीय प्रारम्भिक अवस्था (nascent state)"—में से खूब गुज़र जाते हैं। किसी समय इंजनों में नियामक-यन्त्र (governors) नहीं हुआ करते थे, और वाष्प का वेग अपने वश के बाहर था।

परन्तु अब जब इञ्जनों के लिये नियामक-यन्त्र निर्मित हो चुके हैं, तब शक्ति का व्यर्थ दुर्व्यय क्यों हो? इसी प्रकार जीवन-विधान रूपी नियामक (governor) के पा लेने पर कोई कारण नहीं दीखता कि पीड़ा और कलह पशुओं के समान मनुष्यों पर क्यों राज्य करने पायँ।

इस भौतिक व्यक्तित्व में आसक्त होकर कार्य करना परिच्छिन्न सांसारिक शासनों की दृष्टि में तो कोई पाप नहीं, परन्तु विश्व के सर्वोच्च शासन के सामने यही एक मात्र पाप है और दूसरे दोष तो इस पाप की विभिन्न शाखायें मात्र हैं। संसार में केवल एक रोग और उसकी केवल एक ही दवा है। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इस वेदान्तिक नियम का भंग ही सब व्याधियों की जड़ है, जो कभी एक दुःख का रूप धारण करती है और कभी दूसरे का। और इस की औषधि है अपने वास्तविक ईश्वरत्व को प्राप्त करना। एक बार अपने आप को धोखा देना (अर्थात् निज स्वरूप को भूलकर दूसरे को अपना आत्मा मान लेना) ही अन्य सब धोखों को आप से आप दिन प्रति दिन अधिक उत्पन्न कर लेना है।

क्या राम का कथन एक एकान्त-सेवी की केवल भावना मात्र (reverie = कल्पना मात्र) है और समाज के लोगों के किसी काम का नहीं? जलाशय के पानी के आस पास कोई हरियाली नहीं होती, किन्तु क्या यह भी कोई युक्ति हो सकती है जिसके आधार पर खेत अपने में पैदावार पैदा करने के लिये उस जल से सींचा जाना इन्कार करें? राम केवल दैवी-विधान बतलाता है जो प्रत्येक का निजी जीवन वा

प्राण है। संसार के जितने नियम हैं-रासायनिक,जीव-संबन्धी, मानसिक और ऐसे ही अन्य सब-उन को मैं इस एक दैवी-विधान (उपरोक्त नियमों के नियम) के विशेष उदाहरण(सूचक) पाता हूं; इस से इतर और कुछ नहीं। कार्य-कारण का नियम (Law of Causation-कारणतावाद), सांसारिक संबन्ध, आशायें और कर्तव्य, ये सब के सब केवल परिवर्तन-शील चिह्न (transition points), विचार का तात्कालिक प्रमाण (passing standards of judgments), पथिकाश्रम (रास्ते की सिरायें) बालिकाओं की गुड्डियें (खिलौने), और जलहीन अरब देश का यतम्मम (yatammum) हैं। एक बार जहां हमारी चेतना के मंडल अर्थात् विज्ञान कोष में (आत्म देव का) सूर्य चमका; एक बार जहां हम पदार्थों की वास्तविक अवस्था से परिचित होगये;वहां सब कारण-शृंखला और नियम ग्रहों (planets) और उपग्रहों (satellities) की भाँति हमारी चारों ओर घूमने लग जाते हैं; नहीं नहीं, वे हमारे निकट इस प्रकार आते हैं, जैसे भोजन के समय बालिक अपनी माता के समीप।

यथेह क्षुधिता बाला मातारं पर्युपास्ते ॥ (साम वेद)

जिस प्रकार बच्चे को चलना सीखना होता है, ठीक उसी प्रकार सरलता और स्वाभविकता पूर्वक मनुष्य को मरना सीखना होता है। इस मृत्यु से अभिप्राय वह अवस्था है कि जहां सेवक व्यक्तिगत सेवक नहीं रहता,शिष्य शिष्य नहीं,राजा राजा नहीं,मित्र मित्र नहीं, शत्रु शत्रु नहीं, लोगों के वचन (promises)वचन नहीं,धमकियां धमकियां नहीं,सामान सामान नहीं, अधिकार अधिकार नहीं रहते, वल्कि जहां सब ईश्वर रूप ही हुआ होता है। यहां केवल एक मात्र सत्य है। जब हृदय इस

(सच्चाई) के साथ स्पन्दित होता या धड़कता है तब सारा संसार उस हृदय के साथ स्पन्दित होता या धड़कता है। जब मन इस (सत्य) से विच्छिन्न होता है (अथवा जब मन इस दैवी-विधान के साथ तालबद्ध नहीं होता), अर्थात् जब मन बाह्य दृश्य वा नाम रूपों पर ही आश्रय करता है, तब सारा संसार उस मन से विरुद्ध स्पन्दित वा अनुकम्पित होता है। जब तक हम लोगों में अपने देह की रक्षा करने और अपने व्यक्तित्व की ओर से "शठं शाठ्यम" वत् बदला लेने की भावना जान पड़ती (वा महसूस होती) है, (तब तक समझ लो कि) हम मृत वा गतप्राण हैं। क्लेशकारी वा दर्पहारी तथा अपमान कारी शब्दों को विना ध्यान दिये छोड़ देने की शक्ति से बढ़ कर उत्तम प्रमाण महत्ता का कोई नहीं है।

जब कोई सज्जन वकील के स्थान से जज की कुरसी पर जा बैठता है, तब सारी कचहरी का भाव उसकी ओर बदल जाता है। इसी प्रकार जब हम वकील के स्थान से ऊपर उठकर निष्पक्ष ईश्वरीय ज्योति की स्थिति में आते हैं, तब सारे संसार को हमारे साथ अपने संबन्ध पुनर्निरधारित करने पड़ते हैं, और जिस प्रकार जहाज़ की गति के अनुसार दिग-दर्शक-यंत्र (Compass) की सूई अपनी नोक को हटा लेती है, उसी प्रकार हमारे साथ उनके व्यवहार का ढँग भी बदलना ज़रूरी हो जाता है। क्या लोग आप को ठगते हैं? तो इसलिये, कि आपने अपने में से ईश्वर को ठग कर निकाल बाहिर किया है। प्रोफ़ैसर (अध्यापक) जेम्स ने बहुत ही ठीक अवलोकन किया है:—"जीवन इसी बात पर अवलंबित है कि प्रत्यक्ष भौतिक संवेदनों का प्रभाव हमारे कार्यों पर दूरस्थ बातों की भावनाओं के प्रभाव ideas of

remoters facts) की अपेक्षा क्षीणतर पड़े। पशु केवल भौतिक संवेदनाओं द्वारा ही संचालित या प्रेरित होते हैं। किन्तु मनुष्य की दिव्यता (ईश्वर) का पुनरुद्धार तब होता है, जब अदृष्ट नियम-समूह (laws), नहीं नहीं, वह दैवी-विधान, जो पाशविक मनुष्य के लिये अन्धकार में ढका है, मनुष्य के लिये एक ठोस और कठोर तर तत्त्व हो जाता है, और दूसरी ओर भासमान, क्षणभंगुर रूप, नाम मात्र प्रत्यक्ष मुद्रा (hard cash) इत्यादि, जो मूर्खों के मार्ग दर्शक रूप नक्षत्र हैं, उस के लिये भगवत्-उपस्थिति के प्रकाश में विलुप्त हो जाते हैं।

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥
(भगवद्गीता अ० २ श्लोक० ६६

अर्थः—जो सब प्राणियों के लिये रात्रि है, उसी में संयमी पुरुष जागता है, और जिस में सब प्राणी जागते हैं, वही ज्ञान-नेत्रयुक्त मुनी की रात्रि है।

—o—

दिव्य विनय—दैवी-विधान

खलील आँ राज़ बा आतिश हमे गुफ्त,
अगर मूए-ज़ मन बाक़ीस्त दर सोज़।
बदो मैं गुफ्त आँ आतिश कि ऐ शाह !
ब पेशत मन ब मीरम तो दर अफरोज़॥

भावार्थः—अब्राहीम जब जीते जी जलाया जाने लगा तो उस ने अग्नि देवता से ऐसे प्रार्थना कीः—"यदि मेरा

देह-अध्यास (व्यक्तिगत अहंकार) वाल वरावर भी इस देह में सटा रहा हो, तो मेरी निरन्तर यही विनय है कि "कृपया इसे कदापि न छोड़ो, अवश्य जला डालो"। आग वुझ गई, मानो उसने भक्ति पूर्वक (वा सत्कार पूर्वक) यह उत्तर दिया कि "ऐ मेरे स्वामी! आप जीते रहिये और मुझे आप के चरणों पर मर मिटने दो।"

ऐसा दैवी-विधान है। शिष्टाचार में, विनय में, ईश्वर किसी से हारने वाला नहीं।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन।
यस्त्वेवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवो असन वशे॥ (यजु० संहिता)

सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति॥ (बृहदारण्यक उप०)॥
सर्वेऽस्मैदेवा वलिमावहन्ति॥ (तै० उप)॥

अर्थः—आदि में ही सृष्टि-उत्पादक देवों ने ब्रह्म में रुचि रखने वालों (तीव्र जिज्ञासुओं) से बोलाः—"हे ब्रह्म से अभिन्न ब्राह्मणो! जो कोई भी इस प्रकार ब्रह्म को जान लेगा, उसकी सेवा में हम देवताओं को आज्ञाकारी अनुचर की भाँति उपस्थित रहना होगा।" "उस के सिंहासन के आगे भूतमात्र उपहार ला अर्पित करते हैं।"

उस की वेदी पर सब विधान (देव) भेंट चढ़ाते हैं।

वेदान्त पर एक भारी आक्षेप। वेदान्त हृदय के भावों को मार डालता है और सौन्दर्य्यावलोकन की शक्ति को नष्ट कर डालता है; यह निठुरता (दया वा प्रेम-भाव की शून्यता), और जड़-प्रकृति के समान अटल वा सीधा

(rectilinear) आचरण सिखलाता है, और संबन्धियों का कोई ख्याल नहीं कराता है।

हां, यह (वेदान्त) ऐसा करता है। इस के सच्चे भक्त के लिये सत्य, वास्तविक तत्त्व का इतना भारी विस्तार (विराट् रूप) तो अवश्य होजाना चाहिये कि जिसके सामने पदार्थ, व्यक्तियां, कार्य-कारणत्व, लोगों के मत लुप्त प्राय (vanishing quantities) बन जायँ। परन्तु यदि मानव वा अधिकतर पाशव भावनायें सब धुल कर साफ हो जायं, तो उनके स्थान पर दिव्य भावनायें (विचार) ज़ोर से प्रवाहित होने लगती हैं। नकली ज्योतियों के स्थान पर हास्यमुख (प्रफुल्लित) सूर्य ज्योति आ जाती है जो यद्यपि किसी व्यक्ति विशेष का पक्ष वा सत्कार तो नहीं करती, तथापि इर्द गिर्द सब को प्रसन्नता में भिगो डालती है।

एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक अनुभवी अंग्रेज़ कहता है कि "पहले मैं भी कभी नहीं मान सकता था, किन्तु अब इस सब को मैं स्वयं देख रहा अर्थात् अनुभव कर रहा हूं, कि जब अपने (व्यक्तित्व) विषय सोचना नितान्त त्याग दिया जाय, तो इस के समान कोई सुख नहीं, इस के समान कोई अवस्था नहीं। परन्तु आप को यह अंशतः न करना चाहिये। जब तक अहंकार (देहाध्यास) का किञ्चित् लेश (अणु) बना रहेगा, तब तक यह सब को नष्ट भ्रष्ट कर देगा। आप को यह सब (देहाध्यास) पीछे छोड़ना होगा, और अपने व्यक्तित्व (अहंकार) और मन के साथ उतनी ही सहानुभूति रखनी होगी जितनी कि किसी अज्ञात पुरुष के प्रति रक्खी जाती है, इस से न किञ्चित् न्यून न अधिक।"

वर्षों के अपने विचारों और मन्तव्यों (plans and purposes) को छोड़ कर यश, कीर्ति, एवं चिर परिचित स्वरों के नाद को त्याग दो; आलिंगन करने वाली प्यारी भुजाओं के आलिंगन से वियुक्त होकर अपने इस लालन-पालन किये हुए अहंकार को इस प्रकार परे रख दो जैसे हम अपने दस्तानों को खींच कर उतार देते हैं; रोग-भय को किनारे करके और "लोग हमारे मूल्य को समझेंगे" इस भावना की आशा (hopes of appreciation) को निकाल बाहर कर दो; अपने आप से अशरीरी बन बाहर हो जाओ; दीर्घ काल से रचित आवरण अर्थात् बाहरी कोष को भूसी वत छोड़ दो; वैराग्य के द्वार से प्रभुत्व के प्रसाद में प्रवेश करो; ज्ञान के द्वार से मुक्ति के खुले उपवन में आओ; सब का संन्यास कर दो; जो कुछ अपना है उस से मन को निरासक्त करदो; निर्धन और निःस्वत्व बन जाओ; फिर देखो तुम सब वस्तुओं के प्रभु और अधिराज होजाते हो कि नहीं।

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रे पार्श्व
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं (यजुर)

अर्थः – जय (श्री) और समृद्धि तुम्हारी दासियां हैं। दिन और रात तुम्हारे दक्षिण और वाम भाग (पार्श्व) हैं। नक्षत्रों में शोभा (कान्ति) तुम्हारी दृष्टि (दर्शन) है। स्वर्ग मर्त्य (पृथ्वी और आकाश) तुम्हारे खिले हुए (अलग २) अधर (ओष्ठ) हैं।" यदि किसी वस्तु की तुम्हें इच्छा करनी है तो यह इच्छा करो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

निश्चलचित्त ।

वा

स्थिरधी ।

(क्लास लैकचर, फरवरी १५, सं० १९०३)

उस दिन प्रश्न किया गया था कि "क्या कोई मनुष्य इस युग में वेदान्त-तत्त्व का अनुभव कर सकता है ? और उस पर किसी ने यह सुझाया था कि वेदान्त-तत्त्व के अनुभव करने के लिये मनुष्य को अमुक पदार्थ का त्याग करना ज़रूरी है । इसके लिये उसे अवश्य हिमालय के जंगलों में जाना चाहिये, किन्तु राम कहता है, नहीं, आपको इस निमित्त जंगलों में जाने की कुछ ज़रूरत नहीं ।

आजकल प्रायः समयाभाव की शिकायत बहुत सुनी जाती है । लोग कहते हैं " हमारे पास (ईश्वर-भजन निमित्त) कोई समय नहीं है, हमको तरह तरह के काम देखने पड़ते हैं; हमारे बंधु-मित्र हमारा समय ले लेते हैं" । एक प्रार्थना है कि " हे ईश्वर ! मुझे अपने शत्रुओं से बचा, " किन्तु आधुनिक काल के मनुष्यों को जो प्रार्थना करना चाहिये वह ठीक यह होगी- " हे प्रभो ! मुझे अपने मित्रों से बचा । " मित्रगण हमारा सारा समय छीन लेते हैं; उधर चिन्ता शोक और दुःख हमारा समय ले लेते हैं । हमें अपने बाल बच्चों और सहकारियों की भी देख भाल करनी पड़ती है, मिलने वालों का स्वागत करना और दूसरों से मिलने जाना पड़ता है, कुछ पढ़ना भी तो पड़ता है, ऐसी दशा में हम किस तरह आध्यात्मिक उन्नति के लिये समय निकाल सकते हैं ? ओह कर्त्तव्य (फ़र्ज़,

duties) ! लोगों का समय ले लेते हैं। आराम से भोजन करने का समय भी तो लोगों को इनसे नहीं मिलता। (इस प्रकार) कर्त्तव्य के नाम आप की सारी ज़िन्दगी विक्षिप्त हुए रहती है। परन्तु हमें यह अपने से पूछना चाहिये, कि ये कर्त्तव्य (duties) कहां से आते हैं ? कौन हम पर यह कर्त्तव्य आ डालता है ? हम स्वयं। वास्तव में आप हो जो अपने कर्त्तव्य निर्माण कर लेते हो। क्रूर स्वामी के समान कर्त्तव्यों को आप पर न आ पड़ना चाहिये। दफ़तर के काम की देखभाल करना आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं, पर दफ़तर का काम आप पर कौन डालता है ? आप स्वयं। इस प्रकार यदि आप कर्त्तव्यों के स्वरूप को अन्ततः विचारोगे (या देखोगे), तो आप को पता लग जायगा कि आप अपने स्वामी आप हो. और ये सब कर्त्तव्य जो आप को पूर्ण अपना गुलाम (दास) बनाये हुए हैं, आप ने स्वयं रचे हुए हैं। यदि एक बार भी आप ऐसा भान (वा निश्चय) करलें कि "संसार में कोई पदार्थ नहीं जो मुझे बांध सके, प्रत्येक वस्तु वास्तव में मुझ से उत्पन्न होती है," तो आप बड़े सुखी हो सकते हैं, अपनी स्थिति को बड़े मज़े से ठीक कर सकते हैं।

डाक्टर जोह्नसन के पास एक मनुष्य आकर बोलाः— "डाक्टर ! डाक्टर !! मैं नाश हुआ, मैं गया गुज़रा, मैं किसी काम के योग्य नहीं रहा, मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इस दुनियां में मनुष्य क्या कर सकता है ? डाक्टर जोह्नसन ने उस से पूछा कि क्या हुआ, मामला क्या है ? अपनी शिकायत के लिये सबब (कारण) तो बताने चाहियें। वह मनुष्य इस प्रकार अपनी दलीलें पेश करने लगा। मनुष्य इस संसार में अधिक से अधिक सौ वर्ष जीता है। और इस अपार व

अनन्त काल के सामने भला सौ वर्ष क्या हैं ? इस पर आधी आयू तो निद्रा में बीत जातीहै। आप जानते हो कि हम लोग प्रतिदिन सोते हैं, हमारा बाल्य-काल एक लम्बी निद्रा है। और हमारी वृद्धावस्था का काल भी शिथिलता (debility) और असमर्थता का काल है जबकि हम कुछ भी नहीं कर सकते; फिर हमारा यौवन-काल दुर्विचारों, भाँति भाँति के प्रलोभनों में और दुरुपयोग में खर्च हो जाता है। इस से जो कुछ समय बच निकलता है वह क्रीड़ा कलोल में खर्च होजाता है; हम लोग बहुत खेलते हैं; इस से जो कुछ समय बच निकलता है वह शौच क्रिया करने में, खाने पीने इत्यादिमें नष्ट होजाताहै; और उससे जो कुछ बच निकलता है, वह समय क्रोध, ईर्ष्या, शोक चिन्ता, दुःख और पीड़ा में चला जाता है। यह सब हर एक मनुष्य के लिये स्वाभाविक ही हैं। इससे भी जो बचा रहता है, जो किञ्चित सा समय इसके बाद हमें मिलता है, वह बालबच्चों, मित्रों और बन्धुओं के मिलने मिलाने वा देख भाल में चला जाता है। (ऐसी दशा में) मनुष्य इस संसार में भला क्या कर सकता है ? जो मरते हैं उनके लिये हमें रोना पीटना पड़ता है, और नवागतों के जन्म पर खुशी मनानी पड़ती है। इस प्रकार हमारा सारा समय नष्ट जाता है, और (ऐसी हालत में) मनुष्य कोई पक्का और यथार्थ काम भला कैसे कर सकता है ? अपने ईश्वरत्व को अनुभव करने के लिये कैसे समय निकाल सकता है ? हम तो निकाल नहीं सकते। परे हटाओ इन गिरजाघरों को, दूर करो इन धार्मिक गुरुओं और उपदेशकों को, इनको कह दो कि लोग धर्म (ईश्वर-भजन) के लिये कोई समय नहीं निकाल सकते, अपने ईश्वरत्व को अनुभव करने के लिये उनके पास कोई समय नहीं है। यह हम लोगों के सामर्थ्य से बाहिर हैं।" डाक्टर

जोह्नसन इन शब्दों पर हंसा नहीं, उस ने इस आदमी को तिर-स्कारा व धिक्कारी नहीं, वह केवल रोने लग पड़ा और उसके साथ सहानुभूति करते हुए बोला-"मनुष्यों को आत्मघात कर लेना चाहिये, क्योंकि उन के पास परमार्थ के लिये कोई समय नहीं। भाई! आपकी इस शिकायत के साथ मुझे एक और शिकायत है.मुझे इस से भी बुरी शिकायत करनी है"। इस मनुष्य ने डाक्टर जोह्नसन से कहा कि आप अपनी शिकायत कहिये। डाक्टर जोह्नसन रोने लगा, दिखावटी रुदन करते हुए बोला-"यह देखो, मेरे लिये कोई ज़मीन वा भूमि नहीं रही, कोई ऐसी भूमि बची नहीं जो मेरे खाने भर को अन्न उत्पन्न कर सके, मैं तो गया गुज़रा और मरा।" वह (आदमी) बोला, "अजी डाक्टर साहिब! यह हो क्रैसे सकता है? मैं ने माना कि आप बहुत अधिक खाते हैं, दस मनुष्यों जितना खाते हैं. फिर भी इस पृथिवी पर इतनी भूमि है कि जो आपके उदर के लिये अन्न उपजा सके; आप के शरीर के लिये अन्न या शाक (तरकारी) उत्पन्न करने को काफी भूमि है। आप शिकायत क्यों करते हैं?" डाक्टर जोह्नसन ने उत्तर दिया "अरे देखो तो, आप की यह पृथिवी ही क्या चीज़ है? यह भूमि कुछ चीज़ नहीं। ज्योतिर्गणित में यह पृथिवी एक बिन्दु मात्र मानी जाती है। जब हम तारों और सूर्यों के अन्तर का हिसाब लगाने बैठते हैं, तो हम इस पृथिवी को कुछ भी नहीं अर्थात् शून्यवत् मानते हैं; फिर इस शून्य रूप पृथिवी की तीन चौथाई तो जल से परिपूर्ण है, और इस पर बचता ही क्या है? ज़रा ध्यान दो! एक बहुत बड़ा भाग तो ऊसर बालू से भरा पड़ा है; एक बड़ा भाग ऊसर पर्वतों और पत्थरों ने ले रक्खा है; एक बड़ा भाग तो झील और नदियों ने दबा रक्खा है; फिर इस भूमि का बहुत सा भाग लन्दन

जैसे बड़े २ नगरों से घिरा पड़ा है; उस पर सड़कें, रेलें, गली कूचे इस पृथिवी का एक बहुत बड़ा भाग ले लेते हैं। (अब बतलाइये,) इस पृथिवी का कौन सा भाग मनुष्य के लिये छूट रहा है? (अर्थात् कोई नहीं) तो भी हम मान लेते हैं कि इन सब से कुछ अवश्य मनुष्य के लिये बचा है। परन्तु कितने ऐसे प्राणी हैं जो इस बचे हुए तुच्छ पृथिवी-तल से लाभ उठाना चाहते हैं? इसमें बहुत से पक्षी, बहुत से कीड़े मकौड़े, और बहुत से हाथी घोड़े हैं जो सब के सब इस बचे हुए उपजाऊ भूमि के भाग पर अपने को जीते रखना चाहते हैं, निर्वाह करना चाहते हैं; बहुत ही थोड़ा भाग मनुष्य के हिस्से में आता है। फिर संसार में मनुष्य भी कितने हैं? एक लन्दन को देखो, लाखों करोड़ों आदमी भरे पड़े हैं, ज़रा इस भारी जन-संख्या को तो देखो, ये सब के सब इस संसार वा बड़े शून्य (बिन्दु) के तुच्छ (अत्यन्त अल्प) भाग पर निर्वाह करना चाहते हैं। तब मेरी तृप्ति के लिये भूमि कैसे (व कहां से) अन्न उपजा सकती है? मेरा तर्क तो मुझे इस निराशा और शोक भरे निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि मुझे मर जाना उचित है, क्योंकि मेरी उदरपूर्त्ति निमित्त अन्न उपजाने योग्य भूमि मुझे नहीं मिल सकती।" इस पर वह मनुष्य बोला—"डाक्टर साहिब! आपकी दलील (युक्ति) ठीक नहीं, आपका तर्क तो ठीक जान पड़ता है, परन्तु आप के इस तर्क के होते हुए भी यह पृथिवी आपको धारण कर सकती है।" तब डाक्टर जोहसन ने उत्तर दिया—"अजी महाराज! यदि मेरी यह शिकायत बे बुन्याद (वा युक्तिहीन) है, तो आप की शिकायत भी-कि आध्यात्मिक आहार पाने के लिये समय नहीं मिलता—युक्तिहीन है। यदि मुझे भौतिक भोजन देने को यह भूमि काफी (पर्य्याप्त) है, तो आपके

मन्तव्य के लिये समय भी पर्य्याप्त है, यह भूमि आप को आध्यात्मिक भोजन दे सकती है"। इस प्रकार राम भी इस प्रश्न का कि "वर्तमान सभ्यता हमें कोई आध्यात्मिक भोजन पाने का समय नहीं देती" यही उत्तर देता है। इस प्रश्न का उत्तर राम उसी प्रकार देता है जिस प्रकार वर्षों पहिले डाक्टर जोह्नसन ने दिया था। और वर्तमान दशा में भी आध्यात्मिक उन्नति करने को काफी समय आपके पास है। आपके पास काफी समय है यदि आप उसका ठीक उपयोग करलें।

एक बार (भारत वर्ष में) एक आदमी घोड़े पर स्वार हुए कहीं दूर जा रहा था। मार्ग में उसे एक रहट (Persian wheel) मिला। आप जानते हैं कि भारत वर्ष में पृथिवी से पानी निकालने के लिये एक प्रकार की रहट होती है जिसे हम फारस की चक्की (Persian wheel) कहते हैं। जब रहट द्वारा पानी कुआँ से निकाला जाता है, तब एक प्रकार का शब्द होता है। जब रहट द्वारा पानी कुएँ से निकल रहा था, तब यह मनुष्य अपना घोड़ा वहां पानी पिलाने को ले गया। घोड़े को उस प्रकार के शब्द सुनने का अभ्यास न था, इस लिये वह उसे सुन कर चमका और उस ने पानी न पीया। जो किसान उस रहट को चला रहे थे, उनको उस घुड़स्वार ने वह शब्द बन्द करने को कहा। किसानों ने रहट को बन्द कर शब्द बन्द कर दिया। शब्द तो बन्द होगया, पर शब्द बन्द होने के साथ २ जल का "आना भी बन्द होगया। अब पीने को घोड़े के लिये जल ही न था। घोड़ा पानी के कुंड की ओर बढ़ा, पर वहां पानी बिलकुल था ही नहीं। इस पर यह घुड़स्वार उन किसानों से यों मुखातब होकर बोला-"ऐ

विचित्र किसानों! तुम अजीब आदमी हो! मैं ने तो तुम्हें शब्द बन्द करने को कहा था, पानी बन्द करने को नहीं; तुम लोग परदेशी पर इतनी कृपा भी नहीं करते जिससे वह अपने घोड़े को पानी पिला सके?" किसान बोलेः—"महाराज! हम लोग हृदय से आप की सेवा सुश्रुषा करना चाहते हैं और आप के घोड़े को पानी देना चाहते हैं, किन्तु आप का कहना मानना हमारे सामर्थ्य से बाहिर है। यदि आप पानी चाहते हैं, यदि आप अपने घोड़े को पानी पिलाया चाहते हैं, तो शब्द के होते हुए ही आप अपने घोड़े को पानी पीने को मजबूर कीजिये, क्योंकि जब हम शब्द बन्द करते हैं, तो पानी भी वहीं रुक जाता है, अर्थात् पानी भी प्राप्त होने से रह जाता है, पानी तो नित्य इस शब्द के साथ २ ही आता है।" इसी प्रकार राम कहता है कि अगर आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो सर्व प्रकार के शब्दों (कोलाहल) के बीच में, भाँति भाँति के कष्टों (झंझटों) के बीच में ही उसे कीजिये। इस जगत में आप कभी भी ऐसी स्थिति में अपने को नहीं पा सकते जहां बाहिर से कोई शब्द (खट खट) या दुःख झंझट न हों। चाहे आप हिमालय की शिखरों पर जाकर रहें, वहां भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। चाहे आप अशिष्ट (जंगली) पुरुषों के समान रहें, वहां भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। जहां जी चाहे आप जायें, दुःख झंझट आप को नहीं छोड़ेंगे, ये आप का पीछा कभी नहीं छोड़ेंगे, वे सदा आपके साथ होंगे। यदि आप वेदान्त को अनुभव करना चाहते हैं, तो जब आप के ईर्द गिर्द झंझट रूपी रहट का शब्द खूब जारी हो रहा हो, तभी उसे करिये। जितने महापुरुष हुए हैं, वे सब के सब अपमान कारी (वा तुच्छ निराशा जनक) परिस्थिति और दशा के होते हुए ही

हुए हैं: वास्तव में जितनी अधिक कष्टभरी दशा होती है और जितनी अधिक कठिन (या कष्ट-साध्य) परिस्थिति होती है, उतने ही प्रवल मनुष्य और उतने ही अधिक वलवान् लोग हो जाते हैं जो उन अवस्थाओं में से निकलते हैं। अतः इन वाह्य दुःखों और चिन्ताओं को आनन्द से आने दो। ऐसे अड़ोस पड़ोस में ही वेदान्त को व्यवहार में लाओ। और जव वेदान्त तत्त्व में रहने लगोगे, अर्थात् जव वेदान्त आप के आचरण में आजावेगा, तो आप देखोगे कि ये अड़ोस पड़ोस और अवस्थायें आप से हार मानेंगी, आप के आगे सिर झुकायेंगी, आप के अधीन हो जायंगी, और आप उन के स्वामी वन जाओगे। क्या यह समाज है जो हमें नीचे गिराती है? क्या यह दुनियां है जो हमें नीचे दवाय रखती है? नहीं, आप तो इस दुनियां में रहते ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति तो अपनी रचित क्षुद्र दुनियाँ में रहता है। कितने थोड़े ऐसे पुरुष हैं जो इस संसार में रहते हैं; इस विशाल संसार में वहुत ही थोड़े मनुष्य रहते हैं; आप तो अपनी रचित छोटी सी दुनियाँ में रहते हैं। आप लोगों ने अपनी २ तुच्छ व्यक्ति के चारों ओर अपनी २ दुनियाँ वनाली है। कितने ऐसे लोग हैं जो अपने छोटे से घरेलू-वृत से परे कुछ नहीं जानते, कितने ऐसे लोग हैं जो अपनी जाति की सृष्टि के वाहिर कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं जिनको अपने पति पत्नी या वाल वच्चों की रचित छोटी सृष्टि के वाहिर कुछ मालूम नहीं। कम से कम आप इस विशाल संसार में तो रहिये; इन छोटी सी तुच्छ दुनियाँओं से तो ऊपर उठिये। यह विशाल (विस्तृत) सृष्टि तो आप को नीचे नहीं दवाय रखती; ये आप की अपनी रचित छोटी छोटी सृष्टियां है जो आपको नीचे दवाय रखती हैं; यदि आप इस (छोटी सृष्टि)

से ऊपर उठ सकते हैं, तो सारी दुन्याँ आप के अधीन हो जायगी, आप के आगे हार मान लेगी।

वस्तुतः कर्म क्या है, इसको विचारने से हमारे निज निर्मित क्षुद्र संसार का उदाहरण मिल जायगा। आप कहते हैं कि हम अति प्रवृत्त रहते हैं, और राम ने इस देश में लोगों को समयाभाव की शिकायत करते देखा है, यद्यपि राम यह देखकर विलास को प्राप्त (amused) हो रहा है कि लोग अपनी सारी ज़िन्दगी तो समय का खून करते (वक्त काटते) फिरते हैं और तिस पर समयाभाव की शिकायत करते हैं। उन्हें वक्त तो इतना काफी मिलता है कि उनके सिर और भुजा पर वह भारू हो जाता है, और फिर भी वे कहते हैं-"हमारे पास समय नहीं।"-आप अपने संकल्पों से समय निकाल रहे हो, (you are driving out time from your desires); आप समय पर शासन कर रहे हो, और फिर भी कहते हो कि "समय नहीं है"। यह कैसी बात है? कर्म के रूप के विषय में जो भ्रम आपको हो रहा है, वही आप की शिकायत का कारण है। आप 'कर्म' उसको कहते हो जो वास्तव में 'कर्म' नहीं है। भिन्न २ लोग कर्म की भिन्न २ परिभाषा करते हैं। विज्ञान या यन्त्र-विद्या (mechanics) के लेखक कर्म की एक प्रकार परिभाषा करते हैं, और हम लोग दूसरी प्रकार. उनके मतानुसार आप यदि समधरातल पर चल रहे हो, तो कोई कर्म (वास्तव में) नहीं कर रहे; अथवा गेन्द यदि चिकनी (साफ) समतल भूमि पर लुढ़क रहा हो तो वह (वास्तव में) कोई कर्म नहीं कर रहा है। आप जभी कर्म करते हो जब चढ़ाई पर ऊपर चढ़ते हो; जब आप समधरातल पर चलते हो, तब कोई कर्म (वास्तव में) नहीं करते, यह विचित्र ढंग

कर्म की परिभाषा करने का है। अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा दूसरी रीति से करता है। अध्यात्म-शास्त्र के अनुसार आप तभी कर्म करते हो जब आप का मन उस कर्म में प्रवृत्त है: पर यदि आप कोई कर्म (हाथ से तो) कर रहे हो और आप का मन उस में लगा नहीं है, तो आप वास्तव में कर्म नहीं कर रहे। आप श्वास लेते हो, किन्तु अध्यात्म-शास्त्रानुसार श्वास लेना कोई कर्म नहीं है; खून आप की नाड़ियों में बह रहा है, यह एक हिसाब से तो कर्म है, किन्तु अध्यात्म-शास्त्रों के मतानुसार यह कर्म नहीं। अध्यात्म-शास्त्रवेत्ता "कर्म वास्तव में क्या है" इसके दिखलाने के लिये एक बड़े मार्के का उदाहरण देते हैं:—

एक पुराना अभ्यासवृद्ध योधा था, जो सैनिक शिक्षा और कवायद में इतना अभ्यस्त था कि ड्रिल (कवायद) की क्रियाएं उसके लिये स्वाभाविक हो गई थीं, अर्थात् वह कवायद की क्रियाएं यन्त्र वत् किया करता था। दूध का भारी मटका या कुछ और खाद्य वस्तुएं हाथ में लिये वह (योधा) बाज़ार में जा रहा था। वह अपने हाथों में या कन्धों पर भारी घड़ा (दूध का) ले जा रहा था। वहां बाज़ार में एक पक्का मसखरा (practical joker) आ पहुंचा। उसने चाहा कि यह सब दूध या अन्य स्वादिष्ट खाद्यपदार्थ (उसके हाथ वा कंधे पर से) नाली वा परनाली में गिर जायं। अतः यह मनुष्य एक किनारे खड़ा हो गया, और वहीं बोल उठा "अटेनशन ! अटेनशन !! (attention, attention सावधान हो ! सावधान हो)।" आप को मालूम है कि जब हम अटेनशन (attention) कहते हैं, तो हाथों को नीचे गिरजाना चाहिये। इस अभ्यासवृद्ध योधा ने यों ही कि वह

शब्द 'अटेनशन' सुना, यों ही उसके हाथ स्वतः नीचे गिर गये, और सब दूध या अन्य वस्तुएं, जो उसके पास थीं, नाली में गिर गईं। बाज़ार में सभी राही और दुकान्दार इससे पेट भर हंसे। आप देखते हैं कि जब उसने अटेनशन (सावधान) का शब्द सुना, तत्काल उसने हाथ नीचे गिरा दिये, अध्यात्म-शास्त्र के कथनानुसार उसने कुछ काम नहीं किया, इसको तो प्रति-क्रिया (reflex action) कहते हैं। प्रति-क्रिया कोई कर्म नहीं है, क्योंकि मन उसमें नहीं लगा होता।

अब राम आप से पूछता है कि "कृपा करके बताइये, आप चौबीस घंटे में कितना 'काम' करते हैं?" जब आप खाना खाते हैं तो क्या यह 'कर्म' है? नहीं। जब आप और बीसियों काम करते हैं, तो जिस अर्थ में अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा करता है आप उसी अर्थ में क्या 'कर्म' करते हैं? जब आप टहल रहे हैं, तो क्या कर्म कर रहे हैं? और भी अनेक काम, जिनके नाम लेने की राम को आवश्यकता नहीं, जब आप करते हैं, तो क्या आप कर्म करते हैं? नहीं, कदापि नहीं। आपका मन वा ध्यान (उस काम में) लगा नहीं था। जो काम आपके हाथ में है यदि आपका मन वा ध्यान उस में नहीं है, तो आप कर्म नहीं कर रहे। आप केवल आलस्य में समय काट रहे हैं। क्या आप उस समय को नहीं बचा सकते? क्या आप उस का उपयोग नहीं कर सकते? किन्हीं कामों में हमारा मन पूर्ण लग जाता है, और कुछ काम करते समय हमारा मन आधा लगता है। जिस काम में आप का मन वा ध्यान आधा लगता है, आप आधा कर्म कर रहे हैं, अपना बाकी आधा ध्यान आप उपयोग में लासकते हैं; और जब आपका ध्यान नितान्त अप्रवृत्त (कर्म-कार्य शून्य) है,

तब आप अपने पूर्ण ध्यान को काम में लगा सकते हैं। इस प्रकार अपने मन के ध्यान (अर्थात् चित्तवृत्ति) का उपयोग कर आप अपने जीवन की उन्नति कर सकते हैं। अपने अयुक्त (अप्रवृत्त-unengaged) ध्यान का उपयोग न कर जितना काम आप दिन भर में कर सकते हैं, उस की अपेक्षा अधिक 'कर्म' (आप ध्यान के उपयोग से) कर सकते हैं

इसे अब एक दूसरे उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है।

दो लड़के, जो आपस में मित्र थे, एक बार रास्ते में परस्पर मिले। एक ने अपने मित्र से आग्रह किया कि वह उस के साथ चर्च (गिरजा घर) चले और वहां उपदेश अर्थात् कोई गान अथवा और कुछ सुने। दूसरे ने खेलने का उसे अनुरोध किया। "गिरजाघर जाने और वहां शुष्क स्वर भरा उपदेश सुनने में समय नष्ट करने की क्या आवश्यकता? हम लोगों के लिये खेलना कहीं अच्छा होगा।" वे दोनों सहमत न हुए, इसलिये एक तो गिरजे को चला गया, और दूसरा खेलने की धुन में निकला। परन्तु जो लड़का गिरजा घर को गया; जब पादरी साहिब के सामने उपस्थित हुआ और पादरी साहिब का उपदेश न समझ सका, उस उपदेश के एक वाक्य से भी आनन्द न उठा सका; तब वह गिरजे में आने से पछताया और क्षीण चित्त हुआ; तब वह खेल-भूमि की याद करने लगा। वह सोचने लगा कि दूसरे लड़के के साथ कितने और लड़के खेल में शामिल हुए होंगे और खेल रहे होंगे। पूरे दो घंटे वह गिरजे में रहा, परंतु बराबर उसका मन खेल-भूमि (play-ground) में ही था। उधर दूसरा लड़का जो खेल-भूमि को गया, उसे अपने मन के लायक (अपनी रुचि का) साथी न मिला, कोई ऐसा लड़का उसे

न मिला जो उस के साथ खेल सके। वह अकेला रह गया, इससे उदास होगया। वह गिरजा जाने की सोचने लगा। फिर चित्त में सोचने लगा कि गिरजा जाने का अब समय नहीं रहा। वह (चाहे शरीर से) खेल-भूमि में रहा, किन्तु उस का मन बराबर गिरजा घर में था, (इस लिये चित्त से) वह उतने समय बराबर गिरजा घर में था। दो घंटे के बाद दोनों लड़के परस्पर रास्ते में पुनः मिले। एक ने कहा "मुझे गिरजा न जाने का अफसोस है", दूसरे ने कहा "मुझे खेल-भूमि में न जाने का खेद है"। यही प्रतिदिन हर जगह मनुष्यों के साथ होता है। जहां आपके शरीर होते हैं, वहां आपका मन नहीं रहता। कितने ऐसे लोग यहां हैं जिन्होंने आज व्याख्यान सुना है? बहुत ही थोड़े अपने आप को (चित्तसे) इस हाल (कमरे) में रख सकते हैं; मन तो उड़ भागता है; मन या तो बच्चे के साथ या किसी अन्य मित्रों के साथ होता है; मन एक जगह से दूसरी जगह, एक विषय से दूसरे विषय में भटकता फिरता है। अध्यात्म शास्त्र के अनुसार आप जभी काम करते हो, जब मन उसे करता है। प्रायः आप का शरीर ही जब कोई कार्य विशेष कर रहा है, तब आप ने वह काम नहीं किया होता। अकसर जब आप का तन तो गिरजाघर में होता है, जब आप (मुँह से तो) प्रार्थना करते होते हो, जब आप (कानों से तो) व्याख्यान सुन रहे होते हो, पर (वास्तव में) न आप व्याख्यान सुनते हो, न प्रार्थना करते हो और न गिरजे में ही रहते हो। अकसर ऐसा होता है कि आप शरीर से तो बाज़ार में हो, आप शरीर से तो टहल रहे हो, पर (चित्त से) वास्तव में आप ईश्वर से युक्त हो रहे हो। आप का मन ईश्वर के साथ वा पास होता है। अकसर ऐसा हुआ है कि जो लोग दुष्कर्म और पाप (अपराधों) के

अपराधी ठहराये गये, वे वास्तव में धार्मिक (ईश्वर भक्त) और पवित्रात्मा थे. उन का मन ईश्वर से तन्मय था। अकसर ऐसा होता है कि जो लोग पवित्रात्मा और शुद्ध (साधु) समझे जाते हैं, उनके मन मलीन होते हैं। अकसर हम दुष्टों की उन्नत्ति होती देखते हैं। वेदान्त कहता है कि उन लोगों की यह दुष्टता नहीं है जो उनकी उन्नति वा वृद्धि करा रही है, किन्तु वे चित्त से ईश्वर में वास किये होते हैं, इस लिये लोगों के केवल बाह्य कर्मों से आप कोई परिणाम मत निकालें। यदि कोई मनुष्य चोरी वा खून करता है, तो उसे आपको घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये।

राम अब आप को भारत वर्ष के एक बड़े नामी चोर की अपने मुख से कही कहानी सुनाता है। राम उस समय निरा बच्चा था, और उस ने उस नामी चोर को अपने मित्रों से यह कहानी कहते सुना था, किन्तु राम उस मौके पर वहां स्वयं मौजूद (उपस्थित) था, राम उस समय अपने ग्राम के जंगल में था, वह तब बहुत छोटासा था। छोटे लड़के को कुछ न समझ कर चोर ने इस छोटे बालक की मौजूदगी में (अपने मित्र से कहने में) कुछ न छिपाया, और खुले दिल से सारी कहानी कह डाली। इस कहानी से आप पर इस सारे विषय का रहस्य खुल जायगा। जिस प्रकार एक बार वह धनिक के घर में घुसा और वहां से जवाहिरात चुरा कर भागा था, उसे उस चोर ने वर्णन किया। चोर ने कहा कि "जो जवाहिरात उस धनिक ने हाल ही में लाकर अपने घर में रक्खे थे, उस का किसी प्रकार से मुझको पता लग गया। उसके घर में मैं घुसने को तो चला, किन्तु इसका कोई उपाय वा तरीका न सूझ पड़ा। बार बार सोचने पर

मैं ने राह निकाल ली। मैंने देखा कि घर के पास ही एक बड़ा भारी वृक्ष है, और वह वृक्ष घर की तीसरी मंज़िल की खिड़की के ठीक सामने है, तब मैं ने रात को अन्धेरे के समय उस पेड़ पर एक झूला डालने की युक्ति सोची, उस पेड़ की चोटी पर एक रस्सी डाली, और एक प्रकार का झूला बना लिया, और उस झूले पर मैं झूलने लगा, इस प्रकार उस गरम देश में मैं कुछ काल तक लगातार झूलता गया। गरमी की ऋतु थी, और यह मुझे मालूम था कि घर के लोग पाँचवी छत पर सोये हुए हैं, वे तीसरी छत पर नहीं हैं। जब झूला (झूलते २) खिड़की के पास पहुँचा, तो मैं ने चटाक एक लात मारी, फिर दूसरी लात मारी, और तीसरी लात पर खिड़की के किवाड़ फट से खुल गये। इस प्रकार सातवें, आठवें प्रयत्न के बाद जब खिड़की के किवाड़ या द्वार खुल कर पीछे गिर गये तब मैं घर में जा घुसा। मेरे पास वहां कुछ रस्से थे, मैं ने उन रस्सों को नीचे लटका कर अपने दो या तीन साथियों को ऊपर खैंच लिया। तब मैं अपने चित्त में सोचने लगा कि कहां जवाहिरात के मिलने की संभावना हो सकती है। मैं ने मन को एकाग्र किया; उस एकाग्रता में मेरा मन नितान्त निमग्न होगया। उस समय मैं ने मन में कहा कि लोग अपने जवाहिरात ऐसी जगह पर नहीं रखते जहां चोरों को उस के मिल जाने की सम्भावना हो सके। लोग जवाहिरात को ऐसे स्थान पर रखते हैं जहां से दूसरों को उन्हें पासकने की सम्भावना न हो सके। वहां मैं एक ऐसी जगह खोदने लगा, जहां उनके पा लेने की किञ्चित संभावना थी। जवाहिरात ज़मीन में गड़े थे। उन दिनों भारतवर्ष में यही तरीका था और कुछ लोग आज कल भी वहां ऐसाही करते हैं, परन्तु अब बहुत अपने रुपये को बंकों में रखने लग पड़े हैं। लोग अपने धन

को भूमि में गाड़ रखते थे। मैंने वह द्रव्य पा लिया और तब मैंने सीड़ियों से एक आवाज़ सुनी।" उस समय अपने मन की हालत का वर्णन जो चोर ने किया वह राम भूल नहीं सकता। चोर ने कहा कि "जब मैं और मेरे साथियों ने धन पाते ही आवाज़ सुनी, तो उस आवाज़ ने हमारे शरीर में एक कपकपी सी डाल दी। हम लोगों की सारी देह कांपती, थरथराती, भयभीत होती और चूर चुर हुए जाती थीं; हम लोग सिर से पैर तक थरथरा रहे थे। तब मैंने कहा कि (जान पड़ता है) शायद यह मृत्यु की घड़ी है। हम ने अपने आप को मृतवत् पाया और उस समय हम कह रहे थे कि अब एक नन्हा सा मूसा आकर भी हमारा खातमा कर सकता है।" वह आवाज़ वास्तव में केवल मूसों की आवाज़ थी। तब चोर ने कहा कि "मैं उस समय पछताया, ईश्वर से प्रार्थना की, और अपने शरीर का ध्यान छोड़ ईश्वर के आगे नितान्त आत्म समर्पण कर दिया। तब मैं ने आत्म-समर्पण किया, पश्चाताप कर ईश्वर से क्षमा प्रार्थना की, और उस समय मैं समाधि अवस्था में था, जहां मन मन नहीं था, जहां सब स्वार्थ दूर होगये हुए थे। उस समय मैं और मेरे साथी एक अति विचित्र और बहुत आश्चर्य जनक मानसिक स्थिति में थे। उस समय मैंने प्रार्थना की 'हे भगवान्! मेरी रक्षा करो, मैं योगी हो जाऊँगा, मैं संन्यास ले लूंगा, मैं साधु बन जाऊंगा, मैं अपना सारा जीवन आपकी सेवामें अर्पण कर दूंगा, हे प्रभो! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो। यह बड़ी ही उत्सकता-पूर्ण मार्मिक प्रार्थना थी, बड़ी ही सच्ची विनय थी जो मेरे हृदय की तह और अन्तःकरण से निकल रही थी। वह प्रार्थना मेरे सारे तन के भीतर से वा रोम २ के भीतर से गूंज रही थी, मैं उस समय ईश्वर-ध्यान में निमग्न था, फल क्या हुआ? सब आवाज़ ठण्डी पड़

गई अर्थात् सब शब्द बन्द हो गया, और मैं और मेरे साथी घर से साफ़ बाहिर निकल आये और घर से सकुशल बाहिर आ गये।" अब ध्यान दीजिये, बाह्य कर्मों से ही किसी के विषय विचार स्थिर मत कीजिये; मनुष्य वह नहीं है जो उसके बाह्य कर्म हैं, मनुष्य वह है जो उसके भीतर विचार हैं। यह सम्भव है कि वेश्या के घर में रहने वाला मनुष्य भी भीतर से साधु हो। हम जानते हैं कि भगवान् बुद्ध एक वेश्या के घर में रहे थे, किन्तु वे निष्पाप थे। हम जानते हैं कि हज़रत ईसा रहे थे मेरी मैग्डलेन के घर, जिस स्त्री को लोग पत्थर से मारने जा रहे थे, किन्तु हजरत ईसा ईश्वर थे। हमें मालूम है कि भारत में भी क्राइस्ट के समान लोक-उद्धारक बहुत से हुए हैं, वे निन्दित जनों के साथ रहा करते थे; पर वास्तव में वे ईश्वर स्वरूप थे। आदमी को उसकी संगत से मत जानिये, किसी मनुष्य पर केवल उसके कर्मों से ही निर्णय मत दीजिये। किसी पर अपना विचार स्थिर (शीघ्र) मत करें। मनुष्य वह है जो उसके विचार हैं। अकसर जेलमें रहने वाले लोग स्वर्ग में रहते हैं। बनियन (Bunyon) ने जेलमें ही अपनी पुस्तक (Pilgrim of progress) लिखी; मिलटन (milton) जब जेल में था और अन्धा होगया था तब उस की महती रचना निकली; डेनीयल डी फो (Daniel De Foe) ने जेल में ही रौबिन्सन करूसो लिखा; सर वाल्टर रेली (Sir walter Raleigh) ने जेल में ही अपने संसार के इतिहास (The History of the world) की रचना की। हम चाहते हैं कि हमारा अड़ोस-पड़ोस (इर्द गिर्द स्थिति) अमुक अमुक प्रकार का हो, पर हम रहते वहां हैं जहां हमारे ख्याल रहते हैं। अब हम मृत्यु अर्थात् जीवन में मृत्यु की कथा की व्याख्या करते हैं। ध्यान से सुनिये। राम कहता है कि आपको

सफलता आप की सब से अभेदता का फल स्वरूप प्राप्त होती है। सफलता सदा आपके सद्गुणों का फल है, परमात्मा में लीन और निमग्न होने का परिणाम है। यही बराबर होताहै। चोर भी जब उस अवस्था को प्राप्त हुआ, तो सफल हुआ। (इस प्रकार) आप लोग भी सफल होंगे। उस चोर की सफलता उसकी वास्तविक, सच्ची और हार्दिक विनय सम्पन्न स्थिति(वृत्ति)का परिणाम थी,जिस स्थितिमें कि वह उस समय था। परमात्मदेव वा सर्व रूप में लीन व निमग्न होनेसे उसने जान लिया कि धन कहां है। चोर सफल हुआ,पर चोर की सफलता भी वेदान्त को व्यवहार में लाने के कारण से हुई। इस से प्रत्येक मनुष्य की सफलता सदा उसी कारण से होती है। हम लोग देखते हैं कि वह चोर था, उस ने चोरी की जो बहुत बुरा था, क्योंकि दूसरों को लूटना पाप है, दूसरों को लूटना निःसन्देह समय पर उसे दण्ड देगा, उस के ऊपर आफत लायगा; और जो धन कि वह चोरी से पाता है, और जो पाप कर्म कि वह करता हैं, जो आध्यात्मिक समता (harmony) कि वह तोड़ता है, वह सब के सब अवश्य उस का नाश करेंगे; परन्तु हम देखते हैं कि चोर की भी सफलता सर्व रूप के साथ एकता और अभेदता तथा परमात्मदेव में उस की लीनता का ही परिणाम है, अर्थात् अपने शरीर-भाव के त्यागने का,क्षणभर के लिये शरीर से ऊपर उठने का (अर्थात् देह-अध्यास छोड़ने का), शरीर को सूली पर चढ़ाने का, चर्म-दृष्टि (मांस पिण्ड) को पददलित करने का ही परिणाम है। शारीरिक स्वार्थ पर विजय पाने से ही उसे सफलता मिली है, किन्तु चोरी की वृत्ति, जिस का वहां उपयोग किया गया, वह उस पर दंडभय, त्रास वा कपकपी और चकित वा विस्मित अवस्था लाई। हम भूल करते हैं जब

हम किसी मनुष्य को नितान्त बुरा समझ लेते हैं। यहां तक कि चोर में भी कुछ प्रार्थना शील वा विनय संपन्न वृत्ति और दिव्यभाव वा ईश्वर-भाव होते हैं। क्राइस्टों (धर्म निमित्त प्राण त्यागने वालों), धर्म-प्रचारकों (missionaries), स्वामियों वा गुरुओं (उपदेशकों) में भी कुछ न कुछ बुरी वृत्तियें होती हैं। प्रत्येक मनुष्य में (इन गुण दोष का) विचित्र मिश्रण (queer mixture) है। हम व्यक्ति विशेषों की पूजा करने में बड़ी भूल करते हैं जबकि उन के सद्गुणों के साथ उन में दुर्गुणों का होना ही स्वीकार नहीं करते: इस लिये भ्रान्ति के बीच से सत्य को छाँट निकालने का प्रयत्न कीजिये।

वर्तमान दशा (स्थित) में मनुष्य अपने आत्मा का अनुभव कैसे कर सकता है? इसका उत्तर स्वयं मनुष्य की प्रकृति पर निर्भर है। मनुष्यों का इस संसार में साधारण रूप से तीन प्रकार के स्वभाव वा चित्त वालों में विभाग किया जासकता है। कुछ ऐसे हैं जिन के चित्तों की दशा अस्थिर वा चंचल-स्वभाव (unstable equilibrium) है। कुछ ऐसे हैं जिनके चित्तों की एकाग्रता, जिन के चित्तों की शान्ति स्थिर-स्वभाव (stable equilibrium) वाली है। कुछ ऐसे हैं जो नित्य उभयसामान्य अर्थात् सम स्वभाव हैं। अस्थिर-स्वभाव वा अस्थिर-स्थिति क्या है? अपनी हथेली पर पेंसिल को इस प्रकार रक्खो, यह कभी नहीं ठहरेगी (खड़ी रहेगी), (यहां स्वामी जी ने अपनी हथेली पर पेंसिल को ऊपर की ओर सीधा खड़ा किया), एक आध पल यह शायद ठहरी रहे (खड़ी रह जाय), नहीं तो पवन का हर एक झकोरा इस को नीचे गिरा देगा। इसे अस्थिर-स्थिति कहते हैं। पेंसिल को उस प्रकार रक्खो (यहां पर

स्वामी जी ने पेंसिल को अपनी अंगुलियों के बीच पकड़ा और उसे लोलदंड—पेंडूलम pendulum—के समान लटकाय रक्खा), यह ठहरी हुई वा स्थिर है; किंतु पेंडूलम (लटकती हुई) होने के कारण यह कुछ काल तक हिलती रहेगी, फिर कुछ काल के बाद ठहर जायगी। स्थिरता चाहे भंग होजाय, किन्तु पुनः स्थिरता प्राप्त हो सकती है। पर उस पूर्व दशा में स्थिरता पुनः प्राप्त हो नहीं सकती। किन्तु इस के समान तीसरी स्थिति एक और होती है। पेंसिल को इस प्रकार रक्खो (यहां स्वामी जी ने पेंसिल को टेबल पर रख दिया) यह स्थिर है। इसे उस प्रकार से (टेबल पर) रक्खो, यह स्थिर है। यहां (टेबल पर) जहां कहीं तुम पेंसिल को रक्खो, यह स्थिर है। यह सदा स्थिरता की दशा में है। ठीक ऐसे ही कुछ लोग हैं जिन के चित्त लगातार क्षुभित और हर वक्त विक्षप्त हैं, वे कभी स्थिर नहीं हो सकते, कभी स्थिर दशा में नहीं रह सकते। बाह्य स्थिति उन को स्थिर करदेती है, वे पुनः विक्षिप्त (अस्थिर) होजाते हैं। कुछ और लोग हैं जिन के चित्त प्रायः शान्त, स्थिर (एकाग्र वा ध्यानावस्थित) और निश्चल रहते हैं, पर एक वार विक्षिप्त होने पर घंटों बहुत देर तक क्षुभित वा भ्रमित रहते हैं। और इस जगत् में बहुत से लोग इसी स्वभाव के हैं। आप बाज़ार में टहल रहे हैं, कोई आदमी आता है, आप से हाथ मिलाता है अर्थात् राम राम करता है, और कुछ ऐसे वचन कह जाता है जो स्तुतिमय वा प्रिय नहीं हैं; किन्तु कटाक्ष और निन्दा भरे हैं। वह तो चला जाता है, किन्तु अपना काम कर जाता है, और रीमार्क पास करके चल बनता है। उस विक्षेप का प्रभाव घंटो रहता है, बल्कि कभी २ तो दिनो, हफतों और महीनो और वर्षों तक बना

रहता है। उस रीमार्क (वचन) का असर तो बना रहता है और मन डांवाडोल भ्रमित रहता है, एक बार विक्षिप्त होने पर बराबर हिले जाता और इधर उधर भटकता फिरता है, और मन की यह अवस्था, मन की यह डांवाडोल स्थिति आप का जीवन नष्ट करती है, और आपका सारा समय हर लेती है। अब ज़रा ध्यान दीजिये, कामों या बातों ने तो बहुत समय न लिया, कर्म तो प्रथम क्रिया वा चेष्टा थी जो मन को दी गई, किन्तु उस के उत्तरफल, या यों कहो कि आपके अपने मन की डांवाडोल स्थिति ही आप के जीवन को हर लेती है। यदि आप मन की ये विचित्र चंचलता रोक सको, यदि आप भीतर के विक्षेप पर विजय पासको, यदि आप मन की लगातार भ्रान्ति, स्फुरण वा धड़कन और संशय विपर्य्य को वश में कर सको वा उन का निग्रह कर सको, यदि आप इस मन को अधीन कर सको, तो आपका जीवन लाखों मनुष्यों के जीवन के बराबर हो जाय। आप के जीवन के तीस वर्ष भी सहस्रों वर्ष के तुल्य हो सकते हैं। आप अपने मन वा चित्त के रोग की ओर, वा उस आध्यात्मिक रोग की ओर जिससे कि आप हानि उठा रहे हैं, ध्यान दीजिये। आप के मन का रोग चंचल-स्वभाव है;जब कोई(ऐसी वैसी) बात हो जाती है,मन भय और प्रसन्नता के बीच बीच डांवाडोल फिरता रहता है, अर्थात् मन भ्रम और भय के चंगुल में व्यर्थ फंसा रहता है, न प्रसन्न होने पाता है और न निर्भय। ऐसे लोग-पैंडूलम स्वभाव मनुष्य होते हैं। अब तीसरी प्रकार के लीजिये, वे मनुष्य वीर और मुक्त पुरुष होते हैं। ये वे लोग हैं जिन के चित्त किसी प्रकार की परिस्थिति से विक्षिप्त नहीं होते, चाहे कोई ही बात उन के सामने हो, वे शान्त और निश्चल रहते हैं, चाहे घूरते हुए सागर की

उछलती हुई लहरों (तरंगों) में उन्हें रख दो, वे वैसे के वैसे रहेंगे, चाहे उन्हें युद्ध में रख दो, तब भी वैसे के वैसे ही रहेंगे। आप उनके मित्र हैं, आज्ञा दें आप बात चीत करें और उन्हें सर्व प्रकार की बातें कह डालें (अर्थात् कटाक्ष वा उपालंभ लगा लें), वे उन का प्रत्युत्तर नहीं देंगे। जिस क्षण आप उन से अलग होते हैं, उन का चित्त पूर्ववत् वैसा का वैसा ही शुद्ध पवित्र और हराभरा है। एक निःसंग वा मुक्त पुरुष के साथ आप हज़ारों वर्ष रहें और चले जांय, इससे आप उनके चित्त में किञ्चित् विक्षेप न डाल सकेंगे। वे ठीक दर्पणवत् होते हैं, जैसे दर्पण आप का मुखड़ा आप को वापिस दिखलाता है। आप जानते हैं कि दर्पण आप के मुख का ठीक २ चित्र तो नहीं खींचता। यदि कुंडल आप के बायें कान में है तो दर्पण में दायीं ओर के कर्ण में आप उसे पायेंगे। इसी प्रकार दायां बायां होजाता है, बायां दायां होता है। आप सैकड़ों वर्ष दर्पण के सामने रहें, दर्पण सैकड़ों वर्ष तक आप को वैसा ही दर्शाता रहेगा। दर्पण को अलग कर दें, दर्पण तब भी वैसा का वैसा ही है; ऐसा ही ज्ञान वान् मुक्त पुरुष का हाल है। वह ऐसा है जिसपर बाहिर के दृश्य अपना चिन्ह नहीं छोड़ सकते (अर्थात् उसे दूषित नहीं करसकते), जिस को कोई भी दूषित वा कलङ्कित नहीं कर सकता, और जो नित्य स्वतंत्र वा असंग रहता है। आप आयें और चाहे सारा समय उस की स्तुति करके चले जायं, तो आप के पीछे उस का चित्त उस स्तुति की जुगाली नहीं करता रहेगा (अर्थात् चित्त उस स्तुति को पुनः २ ध्यान में लाकर फूलता नहीं रहेगा)। आप आयें और चाहे गुणदोष विवेचक दृष्टि से और चाहे छिद्रान्वेषी वा कुटिल दृष्टि से उस पर दोष लगा जायं; आप के चले जाने के बाद वह आप

के इस दोष-निरूपण वा छिद्रान्वेषण को बार २ ध्यान में नहीं लावेगा। असंग, निसंग हुआ वह अपने आत्मा में निश्चय रखता है।

अब राम कहता है कि यदि आप वेदान्त को ठीक २ पढ़ो और उसकी शिक्षा को नित्य अपने सन्मुख रक्खो, प्रणव या अन्य कुछ चिन्हों द्वारा अपने भीतर के बोध के साथ, अपने भीतरी विचारों से ठीक ओर में लग कर आप अपने ईश्वरत्व का ध्यान करो और नित्य अपने सत्यस्वरूप को सन्मुख रक्खो, तो आप का चित्त यदि वह शुरू से अस्थिर वा चंचल स्वभाव है तो स्थिर स्वभाव होजायगा, और यदि वह (शुरू से) स्थिर व एकाग्र स्वभाव है तो वह दर्जे ब दर्जे समता को प्राप्त कर लेगा; और यह वेदान्त, यह सच्चाई आपको हरदम अपने सन्मुख रखनी होगी। इस अवस्था में नित्य रहने के लिये राम अब आप को कुछ बाहिर के साधन व सहकारी उपाय बताता है। इसे आज़माओ और आप देखोगे कि यद्यपि लोग इस का उपदेश नहीं करते, तथापि यह एक विचित्र उपदेश है। आप इसे ध्यान में रक्खेंगे। जब लोग राम के पास आकर बात चीत करते हैं, कई समय दूसरों में छिद्रान्वेषण (कुटिल और दोष दृष्टि से छिद्रान्वेषण) करके चले जाते हैं। आप जानते हैं राम कैसे अपने आप को उन के विचारों वा उपदेशों से बचाय रखता है? इस में नाना रास्ते हैं। एक रास्ता यह है। आप इस छोटी पुस्तक को अपने सामने देखते हो, यह एक अद्भुत पुस्तक है, यह पुस्तक एक ऐसे मनुष्य से लिखी गई है जिस की बराबरी का मिलता नहीं है। यह मनुष्य प्रसिद्ध नहीं है। यह मनुष्य

भारतवर्ष में पूजा नहीं जाता। यह पुस्तक* श्रीमद्भगवद्गीता के समान प्रसिद्ध नहीं है, यह श्रीभगवान् कृष्ण से नहीं लिखी गई; यह उस मनुष्य से लिखी गई जो नाम और कीर्त्ति से अपरिचित था। किन्तु यह एक मनुष्य है जो आप को समस्त क्राइस्टस्, कृष्ण, बुद्ध, सारे के सारे दे देता है। राम इस पुस्तक को लेता है. आप जानते हैं यह संस्कृत में है, और जब इस पुस्तक में से एक पद राम पढ़ता है, तो जीवनों या जीवनों के कलंक को तथा समस्त हृदय-तल को धोने और साफ करने में यह काफी होता है। वह तत्क्षण राम को हर्षोन्माद (ecstasy, अत्यानन्द) की अवस्था में डाल देता है. यह छोटी सी पुस्तक, इस पुस्तक का एक एक पद राम के हृदय को हिलाता है और उसे उन्नत कर उस में ईश्वरत्व का विकाश करता है। यह पुस्तक नीच स्वभाव को नाश कर देती है और तत्क्षण माया के पर्दे को फाड़ देती है। इस लिये राम आप को कहता है कि आप भी इसी प्रकार की पुस्तक अपने पास रखें आप अपने पास कुछ ऐसे स्तोत्र रखें कि जो आप को वा आपके विचारों को उन्नत कर सकें; आप में रूह फूंक सकें, अर्थात् आप को प्रबोधन कर सकें; आप अपने पास ऐसे भजन रखें जो आप को तत्काल प्रबोधन कर सकें; आप अपने पास ऐसी कविता रखें जो आप को चोट लगावें वा ईश्वर ओर प्रेरें, आप अपने पास बाइबल, सर्मन ओन दी मौंट (sermon on the mount) रक्खें। आप अपने प्रिय (रुचिकर) लेखकों के पदों (फिकरों) वा वचनों पर निशान लगायें, ऐसे पदों (फिकरों) पर कि

---

*ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय स्वामी जी के पास अवधूत गीता थी।

जो आप को प्रबोधन कर सकें, या ऐसी किसी बात पर कि जो आप के विचारों को ऊंचा करें। आप अपने पास एक छोटी नोट बुक रक्खें जिस में आप ऐसे वचनों को जमा कर रक्खें कि जो आप को प्रबोधन करें, आप को ऊपर उठायें, जो आप को प्रार्थना वा उपासना भाव से भरदें। आप इस पुस्तक को ले सकते हो, आप प्रसन्नता से इस पुस्तक के अन्त की लिखित कविता ले सकते हो। "Oh brimful is my cup of joy"=ओ! मेरे हर्ष का प्याला ऊपर तक पूर्ण है, यह कविता या ऐसी कोई चीज़ जो सन्मार्ग में आप को उत्तेजित वा उत्साहित करे आप ले सकते हैं, उसे आप हर वक्त ठीक हाथ तले (समीप) रक्खें, और जब आप मित्रों से मिल कर हटें या जब आप भिन्न स्वभाव संगत को छोड़ें, तब अपने मन को भटकने, विक्षिप्त वा सारा काल भ्रमित अवस्था में रहने देने के स्थान पर तत्काल उस प्रबोधन करने वाले पद को लें और अपने चित्त को स्थिर वा सावधान करें।

अब आप जानते हैं कि राम ने आप को कारण अर्थात् मन का रोग बता दिया, राम ने साधारण रीति से मानुषी आध्यात्मिक रोग को आप के सामने रख दिया, साधारण रोग (मन का) यह चञ्चल स्वभाव है, और राम ने आप को बता दिया कि कैसे हम मन को स्थिर व अचल रख सकते हैं

हम इस विषय को अब दूसरे समय शुरू करेंगे।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

दुःख में ईश्वर।

[ता० ८ फरवरी १९०३, रविवार के अपरान्त का भाषण।]

मनुष्यों को दुःख क्यों होता है? जगत् में दुःख का क्या कारण है? इस प्रश्न पर आज विचार होगा।

इतिहास की अथवा पौराणिक ग्रंथों में जो कुछ पढ़ा है उसकी दृष्टि से, वा महात्माओं की (उक्तियों) वचनों एवं बुद्धिमान् पुरुषों की सम्मति की दृष्टि से, राम इस प्रश्न पर विचार नहीं करेगा। यह ठीक है कि इन बड़े २ विद्वानों, लेखकों महान् विचारकों तथा ग्रन्थ कर्ताओं ने सत्य ही कहा है, परम सत्य का जैसा रूप उन के अनुभव में आया वैसा ही उन्हों ने प्रकट किया है। परन्तु जब तक आप स्वयं पूरी छान बीन न करो और स्वयं अनुभव कर न देखो, तब तक दुनियां के सब लेखकों की सारी रचनाओं को एकट्ठा करने से भी विशेष लाभ न होगा। राम केवल वही कहेगा जो उस ने निज अनुभव द्वारा देखा है, और जो प्रत्येक व्यक्ति अपने आप अनुभव द्वारा देख सकता है।

आज कल लोगों में, बड़े बड़े सज्जनों, इतिहासज्ञों वा बड़े वैज्ञानिकों के प्रमाण देने की बहुत रुचि है। और जो वक्ता उन महान पुरुषों का प्रमाण दे सकता है, वही अधिक सम्मानित होता है। यह प्रवृत्ति आत्मघातिनी है। राम आप को अपने अनुभव की बातें कहेगा और यह बतलावेगा कि आप अपने अनुभव से क्या क्या सीख सकते हैं।

जगत में दुख का यह प्रधान कारण है कि हम आन्तरिक अवलोकन नहीं करते, हम स्वयं अपनी सम्मति स्थिर नहीं करते, बहुत सी बातों को हम यों ही मान लेते हैं, हम अपने लिये सोचने का काम बाह्य शक्तियों के भरोसे छोड़ते हैं।

हम लोग भीतर बैठकर नहीं देखते, अपने बलपर भरोसा नहीं रखते; दूसरे जो कुछ कह देते हैं उसे ही स्वयं-सिद्ध मान लेते हैं। मुहम्मद, बुद्ध और कृष्ण में विश्वास रखने के अतिरिक्त हम लोगों ने बेहिसाब अपूज्य देवताओं को गढ़ रखा है जिनके आगे हम सिर झुकाते हैं। एक बालक ही यदि हमारे आचरण की टीका टिप्पणी कर डालता है, तो बस, उतना ही हमारी शान्ति को भंग करने के लिये; हमें क्लेश पहुंचाने के लिये पर्याप्त है। हम दूसरों के विचारों दूसरों, की आलोचनाओं की हद से ज्यादा पर्वाह करते हैं और उन की कृपा संपादन करने में बेहिसाब समय बर्बाद करते हैं। यह अपने आप को अड़ोस पड़ोस के लोगों की ही आँखों से देखना, अपने सच्चे रूप पर स्वयं ध्यान न देना बल्कि दूसरों की ही दृष्टि से अपना निरीक्षण करना-यह जो भाव है, यही हमारे सारे दुःखों का कारण है। दूसरों की दृष्टि से अपने को देखने की जो आदत है उसे ही वृथा अभिमान आत्म-सिद्ध (Self aggrandisement) कहते हैं। हम दूसरों की नज़रों में अति भला जंचना चाहते हैं, यही समाज का सामाजिक दोष है, सब भ्रमों का प्रधान अवगुण है।

हिन्दुस्तान के एक ग्राम में एक आधा पागल (नीमपागल) रहता था। जैसे यहां, अमेरिका में अप्रैल महीने में दूसरों को उल्लू बनाने की रीति है, वैसे ही भारतवर्ष में मार्च के महीने में लोग अपने यार-दोस्तों के साथ तरह तरह के मज़ाक किया

करते हैं। उस ग्राम के आनन्दी युवकों ने उस नीम पागल से मज़ाक उड़ाने का अच्छा अवसर समझा। बस, उन सबोंने उसे कुछ शराब पिलाकर मस्त बना डाला, और बाद उसके परम विश्वस्त, परम हार्दिक मित्रको उसके पास भेज दिया। उस पगले मनुष्य के नज़दीक आते ही उसका मित्र गला फाड़ २ कर चिल्लाने लगा, आंखों से दिखौवे आंसुओं की धारा बहाने लगा, रोने धोने लगा, और बोला, "भाई, मैं तुम्हारे घर से अभी आरहा हूं, वहां मैंने देखा कि तुम्हारी स्त्री विधवा हो गई है. मैं ने उसे विधवा पाया।" इस पर वह पागल भी अपनी पत्नी के वैधव्य (widowhood) पर रोने चिल्लाने और विलाप करने लगा, आंसू बहाने लगा। अन्तमें दूसरे लोग आकर पूछने लगे, "तुम रोते क्यों हो?" पगले ने उत्तर दिया, "मेरी स्त्री विधवा हो गई है, इस से रोता हूं।" वे बोले, "यह हो कैसे सकता है ? तुम जीते हो और कहते हो मेरी स्त्री विधवा है; जब तक उसके पति तुम नहीं मरते, वह विधवा कैसे हो सकती है? तुम मरे नहीं, तुम स्वयं अपनी स्त्री के वैधव्य पर शोक कर रहे हो, यह तो बिलकुल बेतुकी बात है।" पर वह पागल कहने लगा, "अरे, जाओ। तुम नहीं जानते, तुम नहीं समझते; हमारे इस अत्यन्त विश्वस्त मित्र ने कहा है कि वह अभी हमारे घर से आरहा है, उसने हमारी स्त्री को वहां विधवा पाया है। वह इस बात के साक्षी हैं; वह देख आये हैं कि वह विधवा हो गई!" (हंसी)। अब तुम इस मूढ़ की कहानी पर हंस रहे हैं कि वह अपनी स्त्रीके वैधव्य पर रो रहा था और लोगों की बात नहीं मानता था कि उसके जीवित होने के कारण उसकी स्त्री विधवा नहीं हुई, बल्कि अपने व्यवहार से वह यह कह रहा है कि

"तुम तो कहते हो सच मेरे भाई !
पर घर से आया है मोरवर नाई"।

किंतु याद रहे, जगत के मत और धर्म तथा सारे दंभी अभिमानी और 'फैशनेबुल' लोग ऐसी ही विकट असंभव बातों को कर रहे हैं। न तो वे अपने नेत्रों से देखते हैं और न अपने दिमाग से सोचते हैं। यहां ही देखिये. आपका अपना आत्मा आपका सत्य स्वरूप, प्रकाशों का प्रकाश, निरंजन, परमपवित्र, स्वर्गों का स्वर्ग, आप के भीतर विद्यमान है। अपका अपना आप, आप का आत्मा सर्वदा जीवित, अजर, अमर, नित्य उपस्थित है; फिर भी आप रो रो कर आंसू ढारते हुये कहते हो, "अरे, हमें सुख कब प्राप्त होगा?" और देवताओं का आवाहन करते हो कि वे आकर तुम्हें विपत्ति से उबार दें। उन देवताओं के आगे प्रणिपात् होते हो, नीचे प्रकृति (sneeking habits) का अवलंबन करते हो और स्वयं अपने को तुच्छ समझते हो क्योंकि अमुक लेखक, अमुक उपदेशक, वा महात्मा अपने को पापी कह गये हैं और वह हमें कीड़े कह कर पुकारते हैं, इसलिये हमें भी वही करना चाहिये, इसलिये अपने को मृतक समझने में ही हमारी मुक्ति है। इसी तरीके से लोग सब चीज़ों पर दृष्टि डालते हैं: पर इससे काम चलने का नहीं। अपने निज-जीवन का अनुभव करने लग जाओ; अपने निजात्मा को भान करना आरम्भ कर दो। इस नशे की हालत को विदा करो कि जो आप को अपनी मृत्यु पर रुला रहा है। अपने पैरों पर आप खड़े हो जाओ चाहे आप छोटे हो वा बड़े, चाहे आप उच्च पद पर हो वा नीच पद पर, इसकी तनिक पर्वाह न करो। अपनी प्रभुता का, अपनी दिव्यता का साक्षात्कार करो। चाहे कोई हो उसकी ओर निशंक

दृष्टि से देखो, हटो मत। अपने आपको औरों की दृष्टि से अवलोकन मत करो, बल्कि अपने आप में देखो। आपका अपना आप आपको बारबार यह उपदेश देगा कि "सारे संसार में आप सब से महान् (आत्मा) हो"।

इसी प्रकार लोग कहते हैं कि वेदान्त, बौद्ध मतादि हमें ऐसा समझने को कहते हैं, किन्तु राम कहता है कि आप के अन्तःस्थित स्वर्ग से यह वाणी निकल रही है कि आप अपने को क्षीण, जीर्ण और पापिष्ठ कभी मत समझो। अपने भीतर के दिव्य स्वरूप का अनुभव करो।

" The mountain and the squirrel
Had a quarrel.
And the former called the latter 'Little Prig'
Bun (squirrel) replied:—
"You are doubtless very big;
But all sorts of things and weather
Must be taken in together,
To make up a year
And a sphere.
And I think it no disgrace
To occupy my place.
If I' m not as large as you
You are not so small as I,
And not half so spry,
I'll not deny you make
As very pretty squirrel track,
Talents differ; all's well and wisely put.

"If I cannot carry forests on my back
Neither can you crack a nut."

एक वार पर्वत पत्नी में हुई लड़ाई;
"तुच्छ जीव—पक्षी !" कह, गिरि ने अकड़ दिखाई
पक्षी बोला, तुम महान हो,—यह तो सच है;
किन्तु वरस भर में सब ही ऋतु आवश्यक है।
"त्यों छोटी औ बड़ी चीज़ मिल 'ग्रह' है बनता,
मैं जैसा हूं, उसे अतः मैं बुरा न गिनता।
"यदि मैं तुमसा बड़ा नहीं, तो लघुता को मम,
तुम भी पाते नहीं; न हो चंचल मेरे सम।
"बात नहीं ऐसी कि कुछ मुझे अस्विकार हो—
वन मृगादि के सहते तुम संपूर्ण भार हो।
"बुद्धि भिन्न हैं, वाह्य भेद भी दुनियां में हैं,
किन्तु सुभग उपयुक्त सभी निज निज थल में हैं।
"हम न वनों को अपने पीठ उठा यदि सकते,
तो वृक्षों से, भला, तोड़ फल क्या तुम सकते ?"

इसी प्रकार, आप का शरीर उस क्षुद्र पक्षी के समान छोटा हो सकता है और आप से भिन्न कोई दूसरा शरीर पर्वताकार हो सकता है, पर इस से अपने को आप कनिष्ठ मत समझो। उस पक्षी (चमर पूच्छ, गुलेहरी) के समान बुद्धिमान बनो। याद रक्खो, यदि आप का शरीर अत्यन्त छोटा भी हो तथापि इस संसार में आपको कोई ऐसा विशेष कार्य्य करना है जो विशाल शरीर से संपादित हो नहीं सकता। तब आप अपने आप को तुच्छ क्यों समझें ? आनन्दित और प्रसन्न चित्त हो।

एक सज्जन राम के पास आये और कहने लगे कि मेरा बड़ा अफ़सर मेरे साथ बुरा वर्ताव करता है। राम ने उसे कहा कि आप का अफ़सर आप को इस लिये नीच दृष्टि से देखता है कि आप स्वयं अपने को नीच दृष्टि से देखते हो। यदि हम अपना सम्मान स्वयं करें तो प्रत्येक मनुष्य अवश्य हमारा सत्कार करेगा। यदि इस छोटी सी पुस्तक पर एक आना मूल्य लिखा हो तो इसके लिये कोई दो आने नहीं देगा। पर इस छोटी पुस्तक का मूल्य १) रु० रखागया है तो इसके लिये १) देने को सभी राज़ी हैं।

इसी तरह तुम अपना मूल्य कम कर दो और देखो, कोई भी तुम्हारा अधिक मूल्य नहीं समझेगा। स्वयं अपना अधिक से अधिक मूल्य निर्धारित करो, आत्म-सन्मान करो, अपने दैवत्व (divinity), अपने ईश्वरत्व (godhead) को भान करो और प्रत्येक मनुष्य को वह मूल्य देना ही पड़ेगा।

लोग कहते हैं कि विश्वास आप का उद्धार करेगा, परन्तु वाह्य सिद्धान्तों (Principles) पर विश्वास आप का उद्धार नहीं करेगा, किन्तु अपने निजी स्वरूप (दैवत्व) में विश्वास आप का उद्धार करेगा। (आत्म-देव) अपने दिव्य स्वरूप में निश्चय रखते हुए विश्वास करो, आत्म-सम्मान करो, तब प्रत्येक मनुष्य आप का सम्मान करेगा।

जिस सद्गृहस्थ ने राम से अपने अफ़सर की शिकायत की थी, उसने राम के उपदेशानुसार, अपने समय को अपने आत्म-देव के अनुभव में विताना शुरू किया। वह नित्य प्रार्थना करने लगा। पर प्रार्थना का यह अर्थ नहीं कि किसी शब्द को वरावर दुहराते रहना, वल्कि अपने आत्मदेव का भान (प्रतीति) करना और अनुभव करना ही प्रार्थना है। वह

इस प्रकार प्रार्थना करने लगा। इसका फल उसने देखा कि उसके अफसर को उसका सम्मान और उसके साथ सद्व्यवहार करना ही पड़ता था। एक दिन उसका अफसर आकर बहुत खिझ कर बोला, पर उस सज्जन ने अति मधुर स्वर से मनोहर रीति से उत्तर दिया और कहा भगवन्! अवश्य ही आप की तनख़ाह मेरी तनख़्वाह से बहुत बड़ी है और मैं जानता हूं कि आप जो विशेष काम करते हैं वह मुझसे नहीं होने का। और आप से मुझे सदा काम रहता है यह सत्य है, पर इसके साथ यह भी सत्य है कि आप को भी मेरी आवश्यकता है। क्या मेरी जगह पर बिना किसी को रखे आप काम चला सकते हैं? नहीं, आप नहीं कर सकते। अतः जैसी मुझे आप की अत्यन्त आवश्यकता है, वैसी ही आपको मेरी अत्यन्त आवश्यकता है, और वस्तुतः आप को पहले मेरी ज़रूरत हुई। आप को इस जगह पर किसी के रखने की ज़रूरत हुई और इस लिये मुझे आप ने बुला भेजा। मैं आप की सेवा नहीं करता, यदि मैं किसी का सेवक हूं तो अपनी ज़रूरतों और आवश्यकताओं का सेवक हूँ। मैं आप का नौकर नहीं, बल्कि अपना नौकर हूं। मैं किसी का दास नहीं (उत्तम अर्थ में सेवा करना ठीक है)।"

ऐसी अवस्था में आप जगत् में किसी के अधीन नहीं हो यदि कोई अपनी ही इच्छाओं के अधीन है तो ऐसी अवस्था में आप जगत् में किसी और के अधीन नहीं। बाह्य अधीनता तो केवल भ्रम है। वास्तव में तो हम केवल अपने ही अधीन हैं। अतः आप अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करो, उसे प्राप्त करो, तुम्हें अपने को किसी देवता वा ईशु, मुहम्मद वा कृष्ण अथवा संसार के किसी महात्मा के अधीन क्यों समझना

चाहिये ? तुम सब के सब स्वतंत्र हो, मुक्त हो। मुक्ति के भाव को ग्रहण करते ही वह तुम्हें सुखी बना देगा।

एक बार ऐशिया के एक राजा ने एक आदमी को अपराधी समझा, उस को अपराधी इस लिये समझा कि उसने राजा को सलाम नहीं किया था। इस बूढ़े राजा को जब कोई सलाम न करता तो वह बहुत क्रोधित होता। उस अपराधी से राजा ने कहा—"तू नहीं जानता कि मैं कितना प्रतापी और कठोर शासक हूं ? तू इतना धृष्ट है ! तुझे मालूम नहीं कि मैं तुझे मार डालूंगा ?" उस मनुष्य ने इसके मुँह पर थूक दिया और इतनी कड़ी नज़र मे उसकी ओर देखा कि वह राजा घबड़ा गया। फिर वह बोला "अरे मूर्ख पुतले ! यह तेरी शक्ति, तेरे अधिकार में नहीं कि तू मुझे मार सके। मैं आप अपना स्वामी हूं। तेरा अपमान करना मेरी शक्ति में है, यह मेरे अधिकार में है कि मैं तेरे मुँह पर थूंक दूं, और यह भी मेरे अधिकार में है कि इस शरीर को सूली पर चढ़ा देखूं, अपने शरीर का मैं आप स्वामी हूं। तेरा अधिकार छोटा (पीछे) है, मेरा अधिकार पहले (सबसे बड़ा) है।" इसी प्रकार महसूस करो, अनुभव करो कि सदा आप अपने स्वामी हो। निज आत्मा की दृष्टि से सब चीज़ों को देखो— दूसरों की आँखों से नहीं। अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करो, अनुभव करो कि आप ईश्वरों के ईश्वर, स्वामियों के स्वामी हो, क्योंकि आप वही हो 'तत्वमसि'।

लोग क्यों दुःख सहते हैं ? वे दुःख भोगते हैं निज आत्मा की अज्ञानता के कारण, जिससे उनको अपना सत्य स्वरूप भूल जाता है, और जो कुछ दूसरे उन को कहते हैं वही वे अपने को समझ लेते हैं। और यह दुःख तब तक

बराबर रहेगा जब तक मनुष्य आत्मा का साक्षात्कार नहीं करता, जब तक यह अज्ञान दूर नहीं होता।

अज्ञान ही अन्धकार है। यदि किसी अँधेरे घर में तुम जाओ, तो दीवार अथवा किसी और चीज़ से तुम अवश्य टक्कर खाओगे, अवश्य किसी प्रकार चोट खाओगे। यह अनिवार्य्य है, तुम इससे बच नहीं सकते। कहीं कहीं पूर्वी हिन्दुस्तान में झोपड़ियों में रहने वाले कुछ लोग इतने अकिंचन हैं कि घर में एक दीपक भी वे नहीं जला सकते। राम ने गलियों में आते जाते समय अक्सर देखा है कि घर का स्वामी अँधेरे घर में जाने पर अवश्य अपनी स्त्री वा अन्य गृहवासियों को दोष देता है। वह कहता है—"अरे तुमने यह टेबुल यहां क्यों डाल रखा है, अभी मेरा घुटना टूट चुका था?" अथवा "इस कुरसी को यहां क्यों रखा है, अभी मेरा हाथ टूट जाता?" अथवा इसी तरह की कुछ और शिकायत करता है। क्या इसकी कोई दवा है? नहीं, बिलकुल नहीं, क्योंकि यदि वह टेबुल वा कुरसी घर के दूसरे कोने में रखी जाय, तो उसे अँधेरे में वहां जाना होगा और वहां वह चोट खायगा। जब तक अंधकार है, तब तक हाथ पांव गर्दन, वा सिर अवश्य टूटेगा, अवश्य ही कभी सिर दीवाल से टकरा उठेगा, यह बचाया जा नहीं सकता। यदि घर में सिर्फ चिराग जला दो, तो फिर तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं, जो जहां है, उसे वहीं रहने दो, तुम एक जगह से दूसरी जगह बिना चोट खाये जा सकते हो।

संसार की भी यही दशा है। यदि आप अपने दुःखों का अन्त करना चाहो तो आप को इसके लिये अपनी वाह्य परिस्थिति पर वा अपने सामाजिक पद (ओहदे) के समाधान वा

संघटन पर भरोसा नहीं करना चाहिये, वरं अन्तरास्थित सूर्य्य के विकास के उपाय पर भरोसा रखना चाहिये। सब कोई, मानो फरनीचर (furniture,सामान) को यहां से वहां हटा कर, वा सांसारिक पदार्थों को इधर से उधर फेर कर, द्रव्य इकट्ठा कर, या बड़े बड़े महल बनवा कर, अथवा दूसरों की ज़मीन, मोल लेकर, दुःख से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। अपनी परिस्थित के सुधारने, वा चीज़ों को इस तरह वा उस तरह सजाने से आप कभी दुःख से नहीं बच सकते। केवल अपने घर में दीपक जलाने से, प्रकाश प्रकाशित करने से, केवल अपने हृदय की अंधेरी कोठरी में ज्ञान का प्रवेश करने से ही दुःख छूट सकता है, हटाया जा सकता और दूर किया जा सकता है। अन्धकार दूर होने दो, फिर कोई आप को हानि नहीं पहुंचा सकता।

हिमालय के किसी भाग में कुछ ऐसे जङ्गली लोग रहते थे, जिन्हों ने आग कभी जलाई ही न थी। पहले के जंगली लोग आग जलाते न थे-आग जलाना उन्हें मालूम न था। मछली को सुखा और अन्न को सूर्य्य की किरणों में पका कर वे खाते थे। ये संध्या होते ही सो जाते और सूर्य्योदय के बाद उठा करते थे। इस प्रकार उन्हें अन्धेरे से कभी काम नहीं पड़ता था। उन के निवास स्थान के निकट ही एक बड़ी भारी गुहा (गुफा) थी। वे जंगली समझते थे कि हमारे पितर लोग इसी में रहते हैं। वस्तुतः बात यह थी कि किसी समय उन के कोई पूर्वज उस गुफा में गये थे और दलदल में फंसकर वा किसी नुकीली चट्टान से टकरा कर मर गये थे। अतः वे जंगली उस गुफा को पवित्र और पूज्य मानने लगे थे, पर उन विचारों को अंधेरे का ज्ञान न होने से वे उस गुफा के अंधकार

को बड़ा भारी राक्षस समझते थे और उसे दूर करना चाहते थे (हंसी) । आप लोग इस मूर्खता पर हसते हैं, पर आज कल के लोग इस से कहीं बड़ी बड़ मूर्खता कर रहे हैं। अस्तु। किसी ने कहा कि उस अन्धकार रूपी राक्षस की पूजा करो तो वह गुफा त्याग कर चला जावेगा। बस, वे सब के सब गुफा के नज़दीक जाकर बरसों उसे दण्डवत प्रणाम करने लगे, पर अन्धकार इस भक्ति भाव से दूर नहीं हुआ। इस के बाद किसी ने सम्मति दी, "अन्धेरे को धमकाओ व उस के साथ युद्ध करो, तो वह भाग जायगा।" फिर क्या था, सब अपना अपना तीर कमान, भाला, लकड़ी फेंकने लगे, पर अन्धेरा उस से भी दूर न हुआ, किञ्चित् विचलित न हुआ। तीसरे ने कहा, "उपवास करो, उपवास ! उपवास करने से अन्धकार हटेगा, अब तक तुम लोग उल्टी बातें कर रहे थे, उपवास की आवश्यकता असल में है।" विचारे उपवास करने लगे, परन्तु वह राक्षस गुफा से न हटा, अन्धकार दूर न हुआ। तब अन्य किसी ने कहा "दान करने से अंधेरा दूर होगा"। इस पर जो कुछ उनके पास था, सब को दान में देने लगे। पर पिशाच ने इस पर भी गुफा न त्यागी। अन्त में एक आदमी आया, उसने कहा कि "मेरी बात मानो तो अन्धकार दूर होजायगा। कुछ बांस की लकड़ियां लाओ, थोड़ी सी घास उन्हें बांधने के लिये और थोड़ा मछली का तेल लाओ।" फिर उसने कुछ चिथड़े, खर वा कोई और चीज़ जलाने के लिये मांगी। इन सबों को बांस के किनारे लपेट कर, चकमक पत्थर से आग झाड़ी और उस बांस को जलाया।

इन जंगलियों ने आग पहले कभी देखी न थी, इस लिये

यह जलती हुई आग उनके लिये एक अनोखा दृश्य था। अब उस मनुष्य ने उन सबों से कहा कि इस मशाल को ले गुफा में जाओ और जहां वह अन्धकार-राक्षस मिले, वहां से उसे कान पकड़कर बाहर घसीट लाओ। पहले उन्हें इस पर विश्वास न हुआ। वे कहने लगे "यह कैसे ठीक हो सकता है। हमारे पूर्वजों ने उपवास करना, दान देना, पूजा आदि बतलाया था। वह सब करने पर भी यह राक्षस दूर नहीं हुआ, अब इस अनजाने आदमी पर कैसे विश्वास करलें, हम तो इस को नहीं मानेंगे ?" उन लोगों ने आग बुझा दी, पर कुछ दूसरे थे, वे इतने पक्षपात पूर्ण नहीं थे। वे रोशनी लेकर गुफा में गये, पर वहां तो वह पिशाच था ही नहीं ! वे उस लम्बे खोह में आगे बढ़ते गये, फिर भी राक्षस दिखाई न पड़ा। तब उन लोगों ने सोचा कि राक्षस कहीं सुराख वा दरार में छिपा होगा, इस लिये कोने कोने रोशनी ले गये, पर राक्षस कहीं नहीं मिला, मानो वह कभी उस में था ही नहीं।

ठीक वैसे ही, आपके अन्तःकरण की गुहा में अज्ञानांधकार रूपी राक्षस घुसा हुआ है। वही दुःख और डर उत्पन्न कर इस सृष्टि को नरक तुल्य बनाता है। सारी चिन्तायें, सारे दुःख दर्द आपके भीतर ही रहते हैं, कभी बाहर नहीं। जब कोई आपको गालियां देता है वा अपशब्द कहताहै, तब मानो वह आपके लिये ऐसा भोजन तैयार करता है जो ग्रहण करने से हानि करेगा। इस प्रकार कोई भी वस्तु तब तक आप को क्षुब्ध वा क्रुद्ध नहीं कर सकती जब तक आप उसे लेकर हृदय में धारण न करलें। राम कभी किसी विषय को अपने भीतर नहीं रखता। राह चलते समय राम पर कितने लोग टीका करते हैं, पर ऐसे शब्दों का तब तक कोई असर नहीं

होता, जब तक उन्हें सत्य मानकर हृदय में न रखा जाय।

वेदान्त की दृष्टि में वह मनुष्य साक्षात्कार पाया हुआ है, जो ऐसे विषैले भोजन को ज़रा भी ग्रहण वा स्वीकार करने का कष्ट नहीं उठाता। ऐसा स्थित-प्रज्ञ पुरुष अपनी शान्ति में कभी विक्षेप वा क्षोभ होने नहीं देता।

अपने सत्य स्वरूप, अपने ईश्वरत्व में स्थित रहो। दूसरों की निन्दा, दूसरों पर दोषारोपण करने वालों पर दया करो। अपने को अपमानित, पद दलित वा पतित कभी मत समझो। अपने 'ऐश्वर्य' की प्रतीति करो, अपने दिव्य स्वरूप में निष्ठा रक्खो; अन्यथा सब अज्ञान है, और सब कुछ अन्धकार है। आपके अन्तःकरण का अज्ञान ही है जो आपके लिये (संसार को) नर्क बनाता है। इस अंधकार को दूर करने के लिये आप (ज्ञान से अतिरिक्त) सब, कुछ उपाय भले ही करो, पर किसी से कुछ न सरेगा।

जब तक आप अपने अन्तःकरण के अन्धकार को दूर करने पर न तुलोगे, तब तक तीन सौ तैंतीस कोटि क्राइस्ट क्यों न अवतार लें, पर तौ भी कुछ लाभ न होगा। परावलम्बी मत बनो। जब तक आप के हृदय में अज्ञान है, तब तक इस देव-मन्दिर से उस मन्दिर में जाना, वा इस समाज से उस समाज में सम्मिलित होना, तथा क्राइस्ट वा कृष्ण के आगे प्रार्थना करना, यह पूजा, यह पदार्थ-पूजा या वह पदार्थ पूजा, सब बेकार हैं। जो मन भावे करो, किन्तु कुछ होने का नहीं इस का एक मात्र उपाय है प्रकाश, और वह प्रकाश है अपने दिव्य स्वरूपका ज्वलन्त ज्ञान और उसमें जीवन्त विश्वास। यही एक मात्र उपाय है, और दूसरी राह नहीं-(नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।).

ऐ महलाओं और भद्र पुरुषों के रूप में विराजमान देव! ऐ प्रति-व्यक्ति-रूप में मेरे आत्मन्! इन सब शरीरों के रूप में ऐ मेरे प्रिय शुद्ध अपना आप! ऐ सर्व-देह-रूपिणी जगज्जननि! ऐ सर्व रूप धारी आनन्दमय आत्मन्! प्रकाश का तात्पर्य्य है सत्य का इतना अधिक अनुभव, कि सब दृश्यमात्र देह और रूप शून्य में परिणत हो जावें। भीतरी प्रकाश वा सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव, वस्तु मात्र को स्फाटिक (पार दर्शक) बना देता और सब नाम रूप व्यक्तियों को वायु का बुदबुदा सा बना देता है। अनुभवी पुरुष के सामने कैसी ही व्यक्ति आ जाय, वह उस व्यक्ति के तुच्छ अहंकार या वाह्य शरीर को नहीं देखेगा, वह केवल (उस में) ईश्वरतत्व देखेगा है। उसके लिये तो वाह्य रूप या शरीर एक मिथ्या भ्रम, अन्धकार और अज्ञान है।

अज्ञान के दूर होने का तात्पर्य है ईश्वर-दर्शन, अपने यथार्थ स्वरूप का दर्शन, तत्व मात्र का साक्षात्कार, आत्मा का अनुभव और सब भय तथा चिन्ता से छुटकारा।

ऐ दिव्य स्वरूप! ऐ परमात्म देव!! इन सब शरीरों में विद्यमान, ऐ मेरे परम प्रिय परमेश्वर!!! औरों की दृष्टि में जो लोग मेरे शत्रु कहलाते हैं, वे सब के सब वस्तुतः मेरे निजात्मा हैं, और जो लोग दूसरों की दृष्टि में मेरे मित्र कहलाते हैं, वे सब के सब भी वस्तुतः मेरे निजात्मा हैं। क्षुद्र अहंभाव को मत देखो, वाह्य व्यक्तित्व पर ध्यान न दो।(अन्य) सब शरीरों में ही नहीं, अपितु अपने शरीर में भी ईश्वर दर्शन करना ही प्रकाश है, जिससे निज आत्मा और ईश्वर बिलकुल एक जैसा दीखने लगता है। 'ईश्वर' मेरे सत्य-आत्मा (वास्तविक रूप) का पर्य्याय वाची शब्द है। वह वास्तविक

स्वरूप 'मैं' सब जगह है। उस 'मैं' का अनुभव करो, उस का निदिध्यासन करो, उसका अनुष्ठान करो; सब दीवारें, सब कठिनाइयां, सब विघ्न और सब बाधायें हवा हो जायंगी। कैसा अद्भुत दर्शन है! कैसा सुन्दर सत्य है!! कितना भव्य तत्व है!!! दुःख है कि इसका वर्णन नहीं होसकता, कष्ट है कि किसी शब्द की वहां पहुंच नहीं, यह दुःख है कि कोई भाषा इसे चित्रित नहीं कर सकती। यह एक तत्त्व है, यदि आपको इस की इच्छा भर हो, यदि आप में इसके लिये उत्कट अभिलाषा हो, तो आप उसे अवश्य पा लेंगे।

जब हम लोग विद्या का अध्ययन करते हैं, तब हम वहां ज्योतिष सम्बन्धी गणना पाते हैं, तब भिन्न भिन्न तारागणों के बीच के अन्तर को नापते समय वा उन (तारों) के परिमाण का हिसाब लगाते समय हम लोग इतने विशाल क्षेत्रों को पाते हैं कि जिनके सामने गणित की दृष्टि से यह पृथ्वी शून्यवत् बिन्दु मात्र होती है।

इसी प्रकार, जब आप परम तत्त्व का साक्षात्कार करने लगते हैं, जब आप को यह प्रतीत होने लगता है कि प्रकाशों का प्रकाश, देवों का अधिदेव, ईश्वरों का ईश्वर स्वयं मैं ही हूं, तब यह विराट् आकाशगंगायें, ये सब खगोलीय तारे एक उपेक्षणीय स्वल्प बिन्दु मात्र होते हैं। – जब आप ऐसा अनुभव करते हैं, ऐसा निदिध्यासन करते हैं, ऐसा विचार करते हैं—अजी, तब यह कैसे संभव है कि संसार के महाभयास्पद (Bug bears हौवेवाट) आप पर कोई प्रभाव डाल सकें ?

जब इन महान तारागणों के सामने यह पृथ्वी शून्यत्व को प्राप्त हो जाती है, तब उस सूर्यों के सूर्य, प्रकाशों के

प्रकाश की उपस्थिति में – मेरे सत्य स्वरूप आत्मा के सम्मुख-इन विचारी लौकिक बाधाओं और चिन्ताओं की, भला, कैसे कुछ गिनती हो सकती है ?

तत्त्व का साक्षात्कार करो, उसका अनुभव करो, उसे अपना जीवन बनाओ, और जब आप उसकी पराकाष्ठा सत्ता का अनुभव करलोगे, तब कोई भी, कुछ भी, आप को विचलित नहीं कर सकेगा। चाहे करोड़ों सूर्यों का प्रलय होजाय, अगणित चन्द्रमा भले ही गल कर नष्ट होजांय, पर अनुभवी ज्ञानी पुरुष मेरू की तरह अटल वा अचल रहता है। उसे क्या हानि होसकती है ? भला संसार में ऐसा है ही क्या जो उसे कष्ट देसके ?

अहो, आश्चर्य्य ! महदाश्चर्य !! ऐसा महान्, ऐसा असीम अवर्णनीय उत्कर्ष ! वह आपका सत्य स्वरूप है और (फिर भी लोग) इसे भूल जाते हैं।

वह सूर्य्य, वह अनन्त सूर्य्य, आँखों पर के एक छोटे से परदे से छिपा है। और परदा आँखों के इतना निकट है कि सारा संसार उस से ढका हुआ है। ऐसा तेजोमय उज्ज्वल तत्त्व और ऐसे तुच्छ अज्ञान से ढका है। अरे, दूर करो ऐसे दुर्बल कारी व अशक्त-कारी अज्ञान को, परे करो उसे। अनुभव करो कि "मैं परमेश्वर ज्योतिषां ज्योति, अकथ्य, वर्णनातीत हूं।" "तत्त्वमसि, तत्त्वमसि" (तुम वही हो, वही तुम हो !) अहा ! उस सत्त्व को जब आप भान करने लगते हैं, तब सभी चीजें कितनी सरल व कितनी साफ़ होजाती हैं।

राम कोई बात इतिहास से वा महात्माओं के जीवन से लेकर नहीं कहता है। राम तो वही कहता है, जो उसके

निजी अनुभव की बातें हैं, और जिसको आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

राम कहता है, जिस समय हम सत्यका अनुभव करते हैं, और तत्व को भान (प्रतीत) करने लगते हैं, उस समय यह जगत वास्तव में स्वर्ग बन जाता है। और तब, न कोई शत्रु रहता है, न भय, न किसी प्रकार का दुखदर्द रहता है, और न चिन्ता। अवश्य, अवश्य यह तत्व ऐसा ही है।

जब हम किसी बहुत ऊंचे स्थान पर हों, तब नीचे की चीज़ों के बीच की ऊंचाई निचाई का लोप हो जाता है। पर नीचे से एक घर बहुत ऊंचा दीखता है तो दूसरा घर बहुत नीचा, या कोई सड़क ऊंची नज़र आती है तो दूसरी नीची। पर जब हम उन्हीं चीज़ों को किसी खूब ऊंचे टीले पर चढ़ कर देखते हैं, तो वह भेद मालूम ही नहीं पड़ता। इसी प्रकार जब आप आध्यात्मिक वैभव के शिखर पर चढ़ोगे, जब आप निज सत्य स्वरूप को भान (महसूस करने लगोगे, एवं जब आप भीतर के तत्त्व का अनुभव कर लोगे, तब आप के लिये शत्रु मित्र अपकारी और उपकारी का तुच्छ भेद सब मिट जायगा। इन तुच्छ भेद भावों की यह प्रतीति ही है, जो हम लोगों को अशान्त बनाती है, और असुखकर परिणाम उत्पन्न करती है। इसके परे पहुंच जाओ, ताकि जो तत्त्व है वही सत्य प्रत्यक्ष हो जाय, और सब भेद भाव लुप्त हो जाय। इसे ही वेदान्त 'एकत्वम्' कहता है। ईश्वर परम सत्य है, जगत वा बाह्य दृश्य तो 'माया' है।

इस लिये आत्मा का, अपने निज स्वरूप का, इस दर्जे तक अनुभव करो कि यह जगत असत्य भान हो, और ईश्वर वा

वास्तविक परमदेव प्रत्यक्ष (Real सत्य) हो जावे । जब आप अपने भाई को मनुष्य कहकर पुकारते हैं और उसके भीतर परमात्मदेव का अनुभव नहीं करते, अरे, तब आप कितना घोरतर पाप करते हैं। अपने इस कृत्य से आप उसके भीतर के आत्मदेव की हत्या करते हैं।

मातृ-हत्या, स्त्री-हत्या, मनुष्य-हत्या आदि अनेक प्रकार की हत्याएं वर्णित हैं, पर प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का अनुभव नहीं करके आप ईश्वर-हत्या या देव-हत्या नामक घोर पाप करते हैं। जब आप किसी मनुष्य को पिता, भाई, पुत्र दोस्त या दुश्मन कह कर संबोधन करते हैं और उसके अन्तरस्थ देव का अनुभव नहीं करते, तब आप शब्दों का कुछ ऐसा प्रयोग करते हैं कि अन्तरस्थ देव की हत्या हो जाती है। जब शरीर, आकार, अथवा बाह्य मायाविक रूप इतना प्रधान हो जाता है कि जिससे भीतर का ईश्वर विस्मृत होजाय, तब आपकी अधोगति होती है। जब जब आप अपने हृदयस्थ देवता की हत्या करने का यत्न करते हैं, तब तब, (कहना चाहिये कि) इस संसार में आप का सर्व नाश होता है। यह ईश्वर-हत्या, यह देव- हिंसा ही अज्ञान है, और यही अज्ञान संसार के दुःखों का मूल है । यह तत्व स्वप्नमात्र रह जायगा यदि लोग इसे व्यवहार में नहीं लावेंगे । यह एक तथ्य है, इसे अनुभव करो और अपने को सुखी बनाओ। इसकी (प्रतीति) करो, अर्थात् इस का निदिध्यासन करो, इसे आचरण में लाओ, और तब आप देखेंगे कि आप अद्भुत संसार में वास कर रहे हैं, आप देखेंगे कि सब शक्तियां (ऋद्धि सिद्धियां) आप की सेवा कर रही हैं, इसका निदिध्यासन करो, फिर सारे सूर्य चन्द्र और तारे आप का हुक्म बजायेंगे।

निरन्तर प्रयोगों द्वारा आप इसे (इस अवस्था को वा इस कथन की सत्यता को) ठीक पायेंगे।

सुखी है वह मनुष्य, जो सतत अपने आत्मदेव का अनुभव कर सकता है. जो सदा सब के साथ एकतानुभव कर सकता है।

एक संस्कृत श्लोक है. जिस का शब्दार्थ है कि "जैसे किसी गुहा में सैंकड़ों वर्षों के अन्धकार को, प्रकाश लाने पर, निकलते देर नहीं लगती, वैसे ही उस मनुष्य का हाल है. जिसने अपने में जन्म से ही अज्ञानान्धकार जुटा रखा है। पर जब यह तत्त्व, यह आत्म ज्योति, उस के हृदय मन्दिर में, दमकती है, तो यह सबका सब भ्रम भाग जाता है।"

बस विषय में राम का यह प्रतिदिन का अनुभव है कि जब वह प्रत्येक विद्यमान मनुष्य वा व्यक्ति में आत्मा का दर्शन करता है, जब वह प्रत्येक मनुष्य की देह को ईश्वर के (शरीर) तुल्य मानता है, वा यों कहो कि जब वह मनुष्य के व्यक्तित्व की जगह उस के भीतर के आत्मतत्त्व को देखता है, तब वह दुःख नहीं पाता; किन्तु जब वह केवल शरीर को देखता है, जब वह किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व मात्र पर ही दृष्टि डालता है, तब राम अवश्य दुःख उठाता है; किन्तु पहले की सब न्यूनताओं और गत सफलताओं के अनुभव से अब राम इतना होशियार तो हो गया है कि किसी व्यक्ति को परमात्मा से भिन्न किसी अन्य भाव से देखने की कभी भी, बल्कि स्वप्न में भी कोई संभावना उसे नहीं रही। राम प्रत्यक्ष देखता है कि आप को सत्स्वरूप मानने से, आप को निज आत्मा अनुभव करने से, और ऐसा अनुभव करने से कि यह सब शरीर मेरे ही हैं, यह सब

देह मेरी ही देह समान है, (दूसरे) लोग भी वैसा ही समझने लग जाते हैं।

'मजनूं' नामक एक मनुष्य होगया है। लोग उसे 'प्रेमियों का राजा' कहा करते हैं। उस के समान किसी ने प्रेम नहीं किया। किन्तु उस का प्रेम था अपनी प्रेम-पात्री के शरीर पर, उस के व्यक्तित्व पर। इसी से वह जन्म भर में उसे न देख सका।

राम कहता है कि यदि आप अपनी इच्छाओं को पूर्ण करना चाहते हैं, तो आप को उन इच्छाओं को त्यागना चाहिये, उन से परे हो जाना चाहिये। पर उस (मजनूं) विचारे को यह रहस्य मालूम नहीं था। फिर भी संसार भर में वह आदर्श प्रेमी था। कहते हैं कि भारी निराशा के कारण उसका दिमाग बिगड़ गया, वह उन्मत्त हो गया। और विचारा यह पागल शाहज़ादा अपने मात-पिता घरद्वार को छोड़ वन २ में भटकने लगा। यदि यह कोई गुलाब का फूल देखता, तो उसे अपनी प्रिया समझ, उसके पास दौड़ जाता, इसी तरह वह (cypress) सरु वृक्ष को माशूका (प्रिया) समझ प्यार करता। हरिन को देख वह उसे अपनी माशूका समझता और उस के पास जाता। ऐसा ही उसका भाव था; वह हर जगह उसे देखता और इन क्षुद्र वस्तुओं को अपनी माशूका के रूप में परिणतकर डालता। किन्त उस के प्रेम का विषय भौतिक था, इसी से उसे इतना कष्ट भोगना पड़ा।

राम कहता है, प्रेम करो और मजनूं की तरह प्रेम करो, किन्तु ईश्वर को, आत्मा को, उस परमात्मदेव को अपना प्रेम-पात्र बनाओ। क्या सारा संसार ही सुख के पीछे पागल,

उन्मत्त नहीं हो रहा है? और सुख 'ईश्वर' का ही पर्य्याय वाचक शब्द है। मजनूं विचारा जानता ही न था कि कहां परम सुख वा ईश्वर मिलता है। वृक्षों में, पशुपक्षियों में जिस 'मजनूं' ने अपनी प्रियतमा का दर्शन किया था, उस 'मजनूं' के समान जिस मनुष्य ने तत्त्व का दर्शन किया है, वही मनुष्य धन्य है! एक दिन 'मजनूं' उसी वन में मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसी समय उसका पिता उसकी खोज में वहां आ पहुंचा। वह 'मजनूं' को धूल से उठाकर, झाड़ पोंछ कर कहने लगा, "प्यारे बेटा! क्या तू मुझे पहचानता है?" 'मजनूं' बेसुध देखता रहा। माशूका बिना उसकी दृष्टि में समस्त जगत शून्यवत् था। उसके रोम रोम से यही ध्वनि निकल रही थी, "कौन पिता, पिता कौन है?" पिताने फिर कहा, "मेरे प्यारे बेटा! क्या तू मुझे नहीं पहचानता, मैं तेरा पिता हूं?" उसने उत्तर दिया, "पिता कौन?" तात्पर्य्य यह कि क्या दुनियां में मेरी माशूका के सिवा और भी कोई चीज है?

जैसा प्रेम 'मजनूं' को उस भौतिक पदार्थ, उस मांस और त्वचा के लिये था, वैसा ही तत्व के साथ प्रेम रखना तत्वानुभव है। दिव्य प्रेम की इस उच्च भूमि में जब आप पहुंच गये, जब आप इतनी ऊंचाई पर चढ़ गये कि आप पिता में, माता में, प्रत्येक व्यक्ति में और किसी का भी नहीं; केवल ईश्वर का ही दर्शन पाते हैं, जब आप पत्नी में पत्नी का नहीं, किन्तु केवल उस परम प्रिय ईश्वर का दर्शन करते हैं, तब अवश्य आप स्वयमेव ईश्वर हो गये। हां, तब आप वास्तव में ईश्वर के समक्ष होगये।

जब तक 'मजनूं' जीवित रहा, तब तक वह अपनी माशूका

(lady love) को न देख सका । कवि आगे लिखता है कि (मरने पर जब) वह खुदा के सामने लाया गया, तो खुदा ने कहा-"अरे मूढ़ ! तू ने एक भौतिक सांसारिक पदार्थ को इतना क्यों प्यार किया ? जितना प्रेम तूने अपनी प्रियतमा पर व्यर्थ किया यदि तू ने उसका कोट्यंश भी मुझे अर्पण किया होता, तो आज तुझे मैं बहिश्त का फ़िरश्ता (स्वर्ग का देवता) बना देता।" कहा जाता है, 'मजनूं' ने उत्तर दिया, "ए खुदा, मैं तुझे इस (धृष्टता) के लिये माफ कर देता हूं। पर यदि सचमुच ही तुझे मेरे इश्क की इतनी चाह थी, तो तू स्वयं मेरी माशूका बन कर मेरे पास क्यों न आया ? यदि तू मेरे मुहब्बत का भूखा था तो तुझे मेरी माशूका, मेरे प्रेम का विषय बनना था ।" इस मजनूं ने तो खेल ही उलटा दिया, किन्तु राम कहता है कि आप को सत्य स्वरूप के साथ ऐसा ही उत्कट प्रेम रखना चाहिये, अपने आत्मा को अवश्य प्यार करना चाहिये, उसे ही अपना प्रेमपात्र समझना चाहिए। उसे प्यार करो, अनुभव करो, 'मजनूं' की तरह अनुभव करो ताकि और कोई वस्तु आप के पास न आने पावे, जब तक वह प्रियतम सत्य स्वरूप के ही रूप में उपस्थित न हो, उस में आप केवल प्रियतम देव को देखो और कुछ नहीं।

इस पर शायद तुम कहो, "क्या ज़रूरत है ? हम इसे अनुभव करना नहीं चाहते। हमतो अपने इस नरक में ही सुखी हैं" तो राम कहता है, सम्भव है कि आप सुखी हों, किन्तु आप का ध्येयम वही है, अतः सड़क पर पैर घसीटते चलने में समय नष्ट करने से क्या लाभ ? यहां आप को आना ही पड़ेगा:पर कीचड़ में चलकर परेशानी तो न उठाओ ! रेलकी ऊंची सड़क पकड़ो, बिजली की गाड़ी, नहीं, नहीं, विमान,

लो,—सड़क के किनारे अपना वक्त बरबाद मत करो।"

आप प्रतिदिन अपने अड़ोस पड़ोस का अवलोकन करें, क्या होता मालूम पड़ता है? आप देखेंगे कि प्रकृति का ऐसा ही प्रबन्ध है कि आप उस लक्ष्य तक पहुंच जांय। यह एक नैसर्गिक घटना है। जब कोई मनुष्य शान्ति, और आनन्द की वृत्ति में होता है, तब कुछ देर तक उस शान्त सुस्थावस्था में रहने से वह देखता है कि उस अवस्था के साथ २ कोई अच्छी खबर आती है, वा कोई शुभ परिवर्त्तन होता है, वा कोई उत्तम घटना घटती है, निरपवाद ऐसा होता ही है।

उस साम्यावस्था में, उस शान्त अचंचल दशा में रहो, और आप देखेंगे कि कोई मित्र मिलने आता है वा कोई प्रिय वस्तु मिलती है, अथवा आप के लिये कोई गौरव जनक बात होती है। जब साधारण मनुष्य इस सफलता पर फूल उठते हैं, वा उस को आत्मिक महत्व देते हैं (तब उन्हें दुःख भोगना ही पड़ता है)। यदि आप उस भौतिक रूप को हृदय में स्थान देंगे, यदि आप उससे आसक्त हो जाओगे और उसे जकड़ रखोगे, उसे बेहद प्यार करने लगोगे, तो आप देखेंगे कि अवश्यमेव कुछ अकथ घटना घट जायगी और वह उस वस्तु को हर लेगी वा उसमें कोई नवीन (अवांछित) परिवर्त्तन पैदा कर देगी। यह दैवी विधान है, यह टाला नहीं जा सकता।

यदि इस विषय पर पुस्तकें नहीं लिखी गई हैं तथापि दैवी-विधान यही है। इसी प्रकार जब आप किसी वस्तु में आसक्ति रख, उसके मोह में अत्यन्त फंस जाते हो जिस से कोई प्रसंग उत्पन्न हो कर वस्तु को हर लेता है और आप

दुःखी एवं निकृष्टतम होते हो, तब दो प्रकार की घटनायें घटती हैं। कुछ लोग इस प्रकार मुँह की खा (निकृष्टतव होने पर) बाह्य दशा को दोष देना, हाथ पैर पटकना और बाह्य स्थिति की समालोचना करना आरंभ करते हैं। ऐसे लोगों पर और भी कड़ी उलझनें आती हैं, तब वे चिल्ला उठते हैं "अरे विपत्तियां कभी अकेली नहीं आतीं"। ऐसा एक वार दुःख उठाने के बाद भी जो लोग अपने चित्त की समता प्राप्त नहीं करते, वल्कि दूसरों की समालोचना करते और उन पर दोष लगाते रहते हैं, वे क्षणभंगुर अवलंव (आश्रय) के पीछे छटपटाते फिरते हैं,क्योंकि बुरे दिन अकेल नहीं आते;परन्तु कुछ काल तक कष्ट झेलने पर उन के चित्त की स्थिति ऐसी हो जाती है कि जिस में अदृश्य बल प्राप्त हो जाता है। तब साम्य अवस्था आती है 'यद् भाव्यं तद् भवतु' भाव का उदय होता है, तब उन वासनाओं के त्याग की वृत्ति चित्त-प्रसन्नता तथा विश्व व्यापक शान्ति की दशा उपस्थित होती है, तब दुःख के बादल दूर हो जाते हैं, और फिर वाहिर से भी अच्छी अवस्था प्राप्त होती है। वे पुनः सत्पथभ्रष्ट होते केवल बाह्य रूपों वा व्यक्तियों पर निर्भर रहने लग जाते हैं, जिस से फिर कठिनाइयों में जा फंसते हैं, और तब कुछ काल के बाद वे धर्म की शरण में आते हैं। कहते भी हैं कि विपत्तियां मनुष्य को धर्ममुख करती हैं "(Mis fortunes lead to religion")

इसी तरह आप के दैनिक जीवन में दिन रात हुआ करतीहै, प्रत्येक दुःख की रात्रि के बाद सुख की प्रभात आती है, और प्रत्येक सुख के दिवस के बाद दुःख की निशा होती है। जब तक आप बाह्य रूपों में आसक्ति रखेंगे, तब तक यह उत्थान

और पतन होता ही रहेगा, एक के बाद दूसरे का आना जारी रहेगा। पर इस आन्तरिक उत्थान पतन का उद्देश्य क्या है? आपको अपने भीतर के सूर्य्य का अनुभव कराना ही इस आन्तरिक पतनोत्थान का उद्देश्य है।

पृथ्वी पर रात्रि और दिवस होता है। पर सूर्य्य में सर्वदा दिन ही दिन रहता है। पृथ्वी के घूमने से ही दिवारात्रि होती है, पर सूर्य्य में रात होती ही नहीं, वहां सदा दिव्य प्रकाश, सदा दिन रहता है।

आप पर आपत्ति दुःख और चिन्तायें इसी लिये आती हैं कि आप भीतर के वैकुंठ का अनुभव करें। इनका काम आप को यही सुझाने का है कि आप हृदयस्थ सूर्य्यों के सूर्य्य, प्रकाशों के प्रकाश का अनुभव करें, और जिस समय आप ने अनुभव कर लिया, उसी समय आप सारे सांसारिक दुःख दर्दों से, परिवर्त्तनों से परे होगये।

अच्छा, हम लोगों को उन्नत करना ही इन दुःख आदि का उद्देश्य किस प्रकार है? सुख का प्रथमागमन हमें यह बतलाता है कि सुख सदा उसी समय मिलता है जिस समय हम अपने भीतर के आत्म-देव से संलग्न वा निमग्न रहते हैं, अथवा जिस समय हम विश्व के साथ अपनी एकता (Harmony) भान करते हैं। इस प्रकार यह हमें बतलाता है कि जब हमारी विश्व के साथ चित्त से एकता है, तब सब सुख हमारे हो जाते हैं; तब वे हमें अवश्य मिलेंगे ही, यही दैवी-विधान है। विपत्ति जो है वह हमें बतलाती है कि भौतिक भ्रममय वा मायिक विषयों में आसक्ति वा मोह का अनुसरण या पीछा करती है। ये कष्ट हमें बतलाते हैं कि भौतिक

में आसक्ति रखना एवं इन भौतिक विषयों को सत्य समझना ही दुःख दर्द एवं चिन्ता का लाना है। इस प्रकार ये दुःख हमें सूचित करते हैं कि भौतिक-पदार्थ मिथ्या हैं अतएव वाह्य सांसारिक नाम रूपों पर हमें अपना समय और शक्ति नष्ट न करने चाहियें। सभी विपत्तियां यही शिक्षा देती हैं। राम सारे जगतके इतिहास को लेकर इसी दैवी-विधान से प्रतिपादित कर सकता है। 'शेक्सपियर' के 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' (Merchant of venice) † नामक नाटक में आप ने देखा होगा कि जब तक 'पोर्शिया' के शरीर में ऐन्टोन्यों आसक्त था, तब तक वह पतित वा पापी था, सफल मनोरथ न हो सका। और बक्सों को चुनते समय उसकी दशा अवर्णनीय थी, वह शून्यावस्था में था; वह बड़ी ही भव्य स्थिति में था। वहां ईश्वर, देवता वा किसी स्वर्गीय दूत का उल्लेख नहीं है, पर ध्यान पूर्वक पढ़ने से पता मिलेगा कि जब उसका चित्त साम्यावस्था में था, जब वह ईश्वर से अभिन्न हो रहा था, उसी समय वह सफल हुआ। भले ही 'शेक्सपियर' ने इसे स्पष्ट न किया हो। कवि लोग इसका स्पष्ट चित्रण नहीं करते। पर यह एक तथ्य है जो प्रति दिन अनुभव सिद्ध होता है। सब सुखों का यही उपदेश है कि आप सदा साम्यावस्था में रहें। वे यही बतलाते हैं कि आपकी समस्त विश्व और प्रकृतिके साथ एकता होनी चाहिये। दुःख निषेधात्मक शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि आप-जगत के पदार्थों से ममता कभी मत जोड़ो और उन्हें कभी सत्य मत समझो। वे उपदेश देते हैं कि आप सर्वगत ईश्वर का उच्छेदन मत करो और न आप नाम रूप पर आसक्त होकर ईश्वर को ही भुला दो। सभी दुःख

† इसका बड़ा ही उत्तम अनुवाद भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'दुर्लभ' नाम से किया है। अनु०

और सभी सुख आप को वेदान्त का पाठ पढ़ाते हैं। जब सब लोग इस पर विश्वास नहीं करते, तो क्या इससे कुछ और सिद्ध होजाता है? नहीं, इससे केवल यही सिद्ध होता है कि इस सत्य को दुनियां नहीं समझ पाती, इसी से दुनियां दुःखी है। सत्य का अनुभव आप करो फिर आप सुखी हो।

भारत में मिट्टी के बर्तन बनाने के लिये अमेरिका के समान मेशीन (कला) नहीं है। वहां कुंभार चाक पर बर्तन गढ़ते हैं। चरणों से एक गहरे भांडे में मिट्टी गूंधी जाती है। और दोहरी रीति बर्ती जाती है। भीतर की ओर से किसी वस्तुका आधार देकर बाहर से उसे थप थपाते हैं, जिससे मिट्टी को बर्तन में गढ़ लेते हैं।

वैसे ही वे बाहरी थपेड़े आपकी उन्नति करा रहे हैं, आप को ईश्वर बना रहे हैं। यह दोहरा तरीका है। भीतरका आधार बनाये रखिये, दुःख कठोर आघात हैं, और सुख अन्तर का आश्रय हैं। सुख दुःख के ज़ोर से चरित्र संगठित होता है। दुःख जो बाहिर से कठोर आघात तुल्य है और सुख जो अन्तर आधार तुल्यहै-दोनों का ही उद्देश्य आपका आन्तरिक ईश्वरत्व का प्रकट करना, अन्तरस्थ ईश्वर को व्यक्त करना एवं आपकी दिव्य प्रकृति को प्रस्फुटित करना है। यह प्रकृति का नियम है कि (उसकी) तलवार के ज़ोर के आगे आप को अपना ईश्वरत्व प्राप्त करना ही होगा। और यदि आप ऐसा नहीं करते तो तमाचे पर तमाचे, लात पर लात ही नसीब होंगे। यदि आप इससे बचना वा छुटना चाहते हैं, तो कृपया आत्मा का,निज सत्य स्वरूप का अनुभव करिये। यही ध्येय है।

O, happy, happy, happy Rama,
Serene & peaceful, tranquil, calm.

My joy can nothing, nothing mar,
My course can nothing, nothing bar.

My livery wear gods, men, & birds,
My bliss supreme, transcendeth words.

Here, there and every where,
There, where's no more a "where"?

Now, ever, anon, and then,
Then when's no more a "when"?

This, that, and which, and what,
That, that's above a "what"?

First, last, and mid, and high,
The one beyond a "why"?

One, five and hundred, All,
Transcending number one & all.

The subject, object, knowledge, sight,
E'en that description is not right.

Was, is, and e'er shall be,
Confounder of the verb "to be"

The sweetest Self, the truest Me,
No Me, no Thee, no He.

राम आनन्द समुन्द्र लीन,
अविचल, सुशान्त विकंप-हीन।
मेरा आनन्द अति विशाल ;
कोई सके हि न विघ्न डाल।

मेरे रथ की गति अविरोध;
कौन करेगा उसका रोध।
मेरा दिया हुआ चपरास;
देवादिक पहने सहुलास।

मेरा शब्दातीतानन्द,
दिव्य,—करे वाचा को मन्द।
यहां वहां और जहां तहां—
'कहां?' जहां पर है नहिं वहां;

भूत, भविष्य, सभी काल में—
अथवा 'काल'-हीन काल में!
सब से अतीत, सब वस्तु में।
प्रारंभ अन्त औ मध्य में॥

प्रश्नों औ कारण से परे।
जो है संख्या से भी परे॥
'कर्त्ता' 'कर्म' 'दृश्य' औ 'ज्ञान'।
जिस का उचित नहीं अभिधान॥
'अस्ति', 'नास्ति', 'है', 'था', का जाल।
बस, देता है भ्रम में डाल॥
सब से सच्ची 'अपनी' सत्ता।
बस वह प्रियतम आत्मा एक॥
जिसे त्याग कर 'हम' 'तुम' 'वह'।
इन सब का कोई नहीं विवेक॥

यही 'सर्व' है, परम आत्मा है, जो (सब कुछ होते हुये भी) अवर्णनीय है; वही तुम हो-'तत्त्वमसि'।

इस तत्त्व का अनुभव करो। जब लोग आकर राम के शरीर की पूजा करते हैं, तब राम अप्रसन्न होता है। राम के भीतर में इतना काफ़ी आनन्द, 'सुख', मोद भरा है कि प्रशंसा वा धन द्वारा प्राप्त होने वाले सुख से वह मुक्त है।

मेरा सुख अवर्णनीय और असीम है। आन्तरिक (आनन्द का) दिव्य मूल इतना पर्य्याप्त है कि उसने राम को नाम, कीर्ति वा द्रव्य के दरवाज़े पर सुख के लिये हाथ पसारने की अवश्यता से मुक्त कर दिया है। मेरे भीतर पर्य्याप्त सुख है।

अरे अनुभव करो, अनुभव करो, उसे प्राप्त करो। वही मुक्त करेगा आप को उस याचक-प्रवृत्ति से, जो लोगों को सांसारिक सुख की खोज में प्रवृत्त करती है।

भारत में एक स्त्री को नौ पुत्र थे। एक दिन उस के द्वारे एक भिक्षुक आया और उस (स्त्री) ने उसे कुछ भिक्षा दी। वह भिक्षुक इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उस को आशीर्वाद दी और भगवान् से ऐसे प्रार्थना की "हे प्रभो! इस देवी को तू सात बच्चों की माता बना"। जब उस सच्चे साधु ने उसे सात बच्चों की मां बनाने की प्रार्थना की तो वह रुष्ट होगई, क्योंकि यह उस के लिये शाप होगया, क्योंकि उस के पहिले ही से नौ लड़के थे, इस से उस के दो लड़कों की हानि होती थी। उस ने फिर से आशीर्वाद देने की उस भिक्षुक से प्रार्थना की और पुनः साधु ने वही आशीर्वाद दिया। वह स्त्री क्रोधित होगई और बहुत से लोग वहां इकट्ठे होगये, और उस के क्रोध का कारण पूछने लगे। यह सुनकर उन लोगों

को हंसी छूटी कि आशीर्वाद आशीर्वाद न होकर शाप होगई। इसी प्रकार राम के अन्दर अकथनीय आनन्द भरा है, सबों को उस आनन्द का उपभोग करने दो। वही हम सबोंको मुक्त, इस संसार के सभी विषयों से मुक्त, करेगा।

हिमालय की बर्फानी नदियों के कमलों के समान शरीर को, व्यक्तित्व को, बिना किसी की दृष्टि और ज्ञान के ही विकसित होने दो। चाहे वह शरीर शूली पर चढ़ जावे वा कैद में रखा जावे, चाहे महा सागर की विशाल तरंगे इसे निगल जावें, वा (Torrid zone उष्ण कटिबन्ध की गर्म्मी इसे झुलसा दे-अथवा और कुछ ही भले ही आपड़े, पर उस भीतर के निजानन्द का रंग भंग नहीं हो सकता। उसी आनन्द का, उसी परात्पर आन्तर सुख का, आप अनुभव करो, और जगत के सब दंभ और मूढ़ता एवं अन्धकार से परे हो जावो।

ईश्वरों के अधीश्वर, देवों के अधिदेव बनो। "तत्त्वमसि ! तत्त्वमसि !!" (वही तुम हो ! वही तुम हो !!)

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(साधारण) बातचीत ।

गोल्डेन गेट हाल, बृहस्पतिवार, २२ जनवरी १९०३

प्रश्न—"हम स्वाधीन होंगे" स्वामी के इस कहने का क्या अर्थ है ?

उत्तर—"हम स्वाधीन होंगे," यह वाक्य यथार्थ में भ्रान्त है। हमारा स्वाधीन होना भ्रान्तिमय नहीं है, क्योंकि हम इस समय भी स्वाधीन हैं, हम आदि से ही स्वाधीन हैं, हम कभी भी बन्धन या दास्यता में नहीं थे। इस प्रकार, "हम स्वाधीन होंगे", यह कहना असलियत में गलत है। साधारण बातचीत में ज्ञान या ज्ञान प्राप्त करने के अर्थ में यह वाक्य बोला जाता है। आप जानते हैं कि गुलामी की क़ैद, जिससे इस संसार के लोग छूटते या उठते हैं, वास्तविक क़ैद या दास्यता वा बन्धन नहीं है, यह केवल भ्रान्त विचार, अज्ञान, और मिथ्या ज्ञानार्जन का फल है। वास्तविक दास्यता या बन्धन नहीं है, और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति, सच्चे निज स्वरूप या आत्मा का अनुभव आप को तुरन्त स्वाधीन, सदा के लिये स्वाधीन कर देता है। वह स्वाधीनता कभी भी गई नहीं थी। इस लिये भविष्य में आनेवाली स्वाधीनता का विचार नहीं करना है, बल्कि उस स्वाधीनता का विचार करना है कि जो सदा आप की रही है, जो आपका जन्मजात-स्वत्व है, जो आपका अपना स्वभाव है।

एक आदमी के गले में एक लम्बा बहु मूल्य हार था। एक समय वह उसे बिलकुल भूल गया। अपने गले में हार

न पाकर उसे बड़ा रंज हुआ। उसकी खोज में वह इधर-उधर भटकने लगा, पर वह न मिला। किसी ने उससे कहा कि हार तो तुम्हारे ही पास है, और वह बड़ा खुश हुआ। यथार्थ में हार मिला नहीं था, क्योंकि वह तो बराबर वहीं था। वह खोया नहीं था बल्कि भूल गया था। इसी तरह आप का सच्चा आत्मा, "मैं हूं", कल्ह, आज, सदा एकसां रहा है और रहेगा; किन्तु मन या बुद्धि को केवल अज्ञान पर विजय पाना है। मन जब, विश्वास करता है कि मूल्यवान हार मिलगया, तब इस अर्थ में हम कह सकते ह कि आप को अपनी स्वाधीनता फिर मिल गयी। आप को अपना रुचिर हार मिल गया, जो यथार्थ में कभी खोया ही नहीं था।

प्रश्न—क्या हमारी आत्मा का व्यक्तित्व निरन्तर बना रहता है?

उत्तर—आप समझ सकते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर "आत्मा" शब्द के अर्थ पर निर्भर है। यदि रुह (सोल Soul) का अर्थ आत्मा माना जाय तो, वह न कभी जन्मा था और न मरेगा। जब जन्म और मृत्यु ही नहीं है, तो निरन्तरता कहां से आसकती है। यदि "आत्मा" को आप आने जाने वाला शरीर या सूक्ष्म शरीर समझते हैं, तो जीवन की धारा अविच्छिन्न वा निरन्तर है।

याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियां थीं, मैत्रेयी और कात्यायनी। वे बड़े धनी थे। वे भारत के अत्यन्त सम्पत्तिशाली राजा के गुरु थे। दोनों स्त्रियों में अपना धन बांट कर वनगमन (एकान्त सेवन) को उनकी इच्छा हुई। मैत्रेयी ने अपना

हिस्सा लेना नामंजूर किया। उसने कहा, यदि धनसे अमरता मिल सकती होती, तो मेरे पति उसका त्याग न करते।

आप देखते हैं कि मैत्रेयी के दिल में यह खयाल पैदा हुआ कि "मेरे प्रिय पति, जो भारत के एक बहुत बड़े धनी हैं, इस दौलत को छोड़ कर दूसरी तरह का जीवन क्यों अपना रहे हैं। अवश्य ही एक तरह का जीवन छोड़कर दूसरी तरह का जीवन कोई भी मनुष्य तब तक नहीं ग्रहण करता जब तक नये जीवन में पुराने की अपेक्षा अधिक सुख, अधिक चैन नहीं समझ पड़ता। इससे स्पष्ट है, अपने वर्तमान जीवन की अपेक्षा मेरे पति को उस जीवन में अधिक सुख चैन होगा जिसे वह ग्रहण करने वाला है।" उसने सोचा और अपने पति से पूछा। क्या "सांसारिक सम्पत्ति की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्पत्ति में अधिक सुख है, अथवा इसके विपरीत है ?"

याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया। "अमीरों की ज़िन्दगी जो कुछ है सो है, परन्तु उसमें असली सुख, सच्चा आनन्द, वास्तविक स्वाधीनता नहीं है।" तब मैत्रेयी ने कहा, "वह कौन सी चीज़ है जिसकी प्राप्ति मनुष्य को स्वतंत्र बना देती है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को लौकिक लोभ और तृष्णा से मुक्त कर देती है ? वह जीवन-सुधा मुझे बताओ, मैं उसे चाहती हूँ"।

याज्ञवल्क्य का सब धन और दौलत तो कात्यायनी के हाथ लगा, और मैत्रेयी को उनकी सब आध्यात्मिक सम्पत्ति मिली। वह आध्यात्मिक सम्पत्ति क्या थी ?

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भव ॥

बृह० उपनिषद् ।

इस पंक्ति के कई अर्थ हैं। मोक्समूलर ने इसका कुछ और ही अर्थ किया है। बहुतेरे हिन्दू एक दूसरा ही अर्थ करते हैं। दोनों अर्थ ठीक हैं।

एक अर्थ के अनुसार, "पति के प्रिय होने का कारण यह नहीं है कि उस में कुछ गुण हैं या उसमें कोई विशेषता है जो प्यार के योग्य है. उस के प्रिय होने का सबब यह है कि वह स्त्री के दर्पण का काम देता है। जिस तरह से हमें शीशे में अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी तरह अपने पति रूपी दर्पण में स्त्री अपने आप को देखती है, और इसी लिये वह पति को प्यार करती है, इसी से पति उसे प्यारा है।"

दूसरा अर्थ यह है कि "स्त्री पति को पति के लिये नहीं प्यार करती, बल्कि इस लिये कि उसे पति में सच्चे तत्त्व, परमेश्वर, सच्चे परमात्मा के दर्शन होने चाहिये।"

आप जानते हैं कि यदि प्रेम के पलटे में प्रेम नहीं मिलता, तो कोई प्रेम नहीं करता। इस से जाहिर होता है कि दूसरों में प्रतिबिम्बित केवल अपने आप ही को हम प्यार करते हैं। हम अपने सच्चे आप (आत्मा) को, भीतरी ईश्वर को देखा चाहते हैं, और कभी किसी वस्तु को हम उसी के लिये प्यार नहीं करते।

यह एक कल्पना है। इसे जाँचिये, इस की छान-बीन कीजिये, और आपको यह मालूम होगा कि वस्तुओं के प्यारी होने का कारण सच्चा अपना आप है। सम्पूर्ण मधुरता आप

के भीतर के सच्चे अपने आप (आत्मा) में है। ऐसे भावों का दुरुपयोग न करो। जो सीढ़ी सदा तुम्हारे चढ़ने के लिये लगी है उसे अपने को अज्ञान या संकट में गिराने या उतारने वाली न बनाओ। इस मामले को जाँचो और देखोगे कि सच्चा माधुरी, सच्चा आनन्द, सच्चा सुख कहाँ है। जानोगे कि वह केवल तुम्हारे अपने आप, सच्ची आत्मा, ईश्वर में है। इसे देखो और स्वतंत्र (मुक्त) हो जाओ। इसे जानो और सब सांसारिक आकांक्षाओं से ऊपर उठो। अपने को उठाओ, इन सब नीची, तुच्छ इच्छाओं से अपने को ऊपर उठाओ। ईश्वर से एक होजाओ।

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति।

बृ० उपनिषद्।

"सचमुच, लड़के के लिये लड़के प्यारे नहीं हैं, किन्तु अपने (आत्मा) लिये लड़के प्यारे हैं"।

"लड़के सच्चे अपने आप, सच्ची आत्मा के लिये प्यारे हैं"। जब तुम्हारे लड़के तुम्हारे विरुद्ध हो जाते हैं, तब तुम खिन्न होते हो, उन्हें भगा देते हो, अपने पास से हटा देते हो। अरे, तब तो तुम देख सकते हो कि लड़के किस के लिये प्यारे थे।

उदाहरण के लिये, तुम्हें अपने लड़के के लिये कुछ कपड़ों की जरूरत पड़ती है। तुम्हें कपड़े बहुत अच्छे लगते हैं, परन्तु कपड़े कपड़ों के लिये तुम्हें प्यारे नहीं हैं बल्कि लड़के के लिये प्यारे हैं। लड़का कपड़ों से अधिक प्यारा है। इस तरह हम देखते हैं कि लड़का अपने निजात्मा

आत्मा के लिये प्यारा लगता है। आत्मा में, सच्चे अपने आप में अवश्य ही लड़के से अधिक सुख, अधिक आनन्द है।

न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ॥ ५ ॥

(बृहदारण्यक उपनिषद्, दूसरा अध्याय, ४ ब्राह्मण)

"सचमुच, सम्पत्ति के लिये सम्पत्ति प्यारी नहीं है, किन्तु अपने आप के लिये सम्पत्ति प्यारी है"।

तुम इस देवता और उस देवता से विनय करते हो, और कहते हो कि "हे देव! आप बड़े श्रेष्ठ हैं, आप बड़े कृपालु और दयालु हैं, आप बड़े सुन्दर हैं, आप ही सब कुछ करते हैं" इत्यादि। ऐसा आप क्यों कहते हैं? इसलिये कि देवता आपकी जरूरतों को पूरा करता है, इसी कारण से कि देवता आप के अपने आप की, आप में असली सच्चे अपने आप की सेवा करता है। देवता के लिये आप देवता की विनय नहीं करते, बल्कि अपने लिये करते हैं। इस पर ध्यान दो। सच्चा अपना आप सब सुखों का, आनन्द का, मूल है। इसे जानो और इसे अनुभव करो।

हिन्दुस्तानी कठपुतली के तमाशे में एक आदमी परदे के पीछे बैठा रहता है, और उसके हाथ में बहुत से महीन तार होते हैं। ये तार पुतलियों की स्थूल देह से जुड़े रहते हैं। जो लोग पुतलियों का नाच देखने आते हैं, उन्हें ये महीन तार नहीं दिखाई पड़ता, और न उन तारों का खींचने वाला ही परदे के पीछे बैठा देख पड़ता है। इसी तरह, इस संसार में, ये सब स्थूल शरीर, स्थूल कठपुतलियों के तुल्य हैं। आम तौरसे लोग इन्हीं स्थूल शरीरों को वास्तविक रूप से करने

वाला, स्वतंत्र, और कर्त्ता मानते हैं, और बाह्य देह-दृष्टि अर्थात् परिच्छिन्नात्मा की ही दृष्टि से सब बात चीत करते हैं। वे शरीर को स्वतंत्र कर्त्ता समझते हैं, और यदि उनके मित्र तथा नातेदार उनके अनुकूल कुछ करते हैं या उनकी सेवा शुश्रूषा करते हैं, तो वे प्रसन्न होते हैं। पर यदि मित्र और नातेदार आपके विपरीत काम कर बैठते हैं तो घृणा, निराशा, फूट और बेचैनी पैदा हो जाती है, और मित्रों तथा नातेदारों को चाहने के बदले आप उनसे नफरत करने लगजाते हैं। ये एक प्रकार के लोग हैं। दूसरी प्रकार के लोग-जो उच्च श्रेणी के हैं, महीन तार, डोरों पर बड़ा ज़ोर देते हैं। ये लोग अधिक बुद्धिमान्, अधिक तत्त्वज्ञ, और अधिक आध्यात्मिक हैं। ये लोग महीन तार, महीन डोरे की सारी महिमा बताते हैं। स्थूल शरीर रहित और स्वतंत्र भौतिक वस्तु वा भूत प्रेत को ये लोग प्रत्येक कर्म का सच्चा कारण समझते हैं। भूत प्रेत से अभिप्राय इनका निज आत्मा नहीं बल्कि सूक्ष्म शरीरधारी निशाचर वा प्रेतनर होता है। अपनी हद तक ये लोग ठीक हैं। वे एक कारण और कार्य की दृष्टि रखते हैं। वे सूक्ष्म तार और स्थूल शरीर पर उसके प्रभाव को देखते हैं, परन्तु हम जानते हैं कि, मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाली शक्ति, परदे के पीछे असली तत्व वा वस्तु, इन महीन तागों या तारों को खींचनेवाली असली शक्ति, सब को भान करने वाली शक्ति, ये सब के सब यथार्थ में उसी अवर्णनीय शक्ति या आत्मा से नियंत्रित होते हैं जो देश, काल या वस्तु से परिच्छिन्न नहीं है। यही सच्ची अमरता, यथार्थ सुख, आनन्द और प्रसन्नता है। यही सब कुछ है। यही आत्मा है।

इन सब उपद्रवों से स्पष्ट होता है कि लोगों के ये सकल सम्बन्ध और सम्पर्क (connections) मानो मानवजाति

के लिये उपदेश हैं, वे मनुष्यों के लिये एक प्रकार की शिक्षा हैं। तुम्हारे सांसारिक सम्बन्ध और सम्पर्क आगे चलकर जिस महान् अवस्था में तुम्हें खींच ले जाते हैं, वह अपने निजस्वरूप का अनुभव है, जो तार खींचनेवाला या पर्दों की ओट में असली तत्व है। ये उपद्रव आप पर स्पष्ट करते हैं कि आप को अपने आप का अनुभव करना चाहिये, आप को अपने स्वरूप की असलियत का बोध होना चाहिये, जो सब के पीछे है, जो मनुष्य के मन और शरीर का भी शासक और नियन्ता है। लोगों के मन और शरीर भी इस परम शक्ति, इस वास्तविक प्रेम, इस उत्कृष्ट तत्त्व के शासन के अधीन हैं

इस तरह यह देखना और समझना है कि जब आप किसी सुहृद् का अवलोकन करते हो, तब आप उसकी ओट में स्वयं अपने शुद्ध स्वरूप का अवलोकन करते हो; जब आप उसे बातचीत करते सुनते हो, तब सुनने की क्रिया का नियमन आप के भीतर के निज स्वरूप द्वारा होरहा है; जब किसी मित्र की शक्ति तुम्हारे ध्यान में आती है, तब उसके भीतर परमेश्वर पर तुम्हारा ध्यान जाता है। जब तुम्हें इस शक्ति का परिज्ञान होजाता है, तब तुम धोखे में नहीं होते, तुम्हें क्लेश नहीं होता, तुम क्षुभित नहीं होते।

ठीक जैसे लोग जड़ पुतलियों को देखते हैं, उसी तरह वे जानते हैं कि इस सब के पीछे शक्ति मेरा सच्चा स्वरूप है।

लोगों के कामों के पीछे की ताकत को देखो। उसका अनुभव करो, और जानो कि तुम वही हो। उसे भी उसी उग्रता या गंभीरता से जानो जिस उग्रता से तुम रूप और ...ग को जानते हो।

ब्रह्म तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद।
क्षत्रं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनो क्षत्रं वेद।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान् वेद।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान् वेद।
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद।
सर्वं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद।
इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रम्, इमे लोकाः, इमे देवाः।
इमानि भूतानि, इदं सर्वं, यदयमात्म ॥ ६ ॥
बृ. उपनिषद्।

"जिस किसी ने ब्राह्मणत्व को अपने आत्मा से अन्यत्र देखा, उसे ब्राह्मणत्व ने त्याग दिया। जिस किसी ने क्षत्रियत्व को अपने आत्मा से अन्यत्र देखा, उसी को क्षत्रियत्व ने त्याग दिया। जिस किसी ने लोकों को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र समझा, उसी को लोकों ने त्याग दिया। जिस किसी ने देवताओं को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र जाना, उसको देवताओं ने दूर कर दिया। जिस किसी ने प्राणियों को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र देखा, उसी को प्राणियों ने त्याग दिया। जिस किसी ने भी किसी भी वस्तु को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र देखा, उसी को हरेक वस्तु ने त्याग दिया। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये प्राणी, यह सब वही आत्मा है।" यह आत्मदेव की स्पष्ट और सरल व्याख्या हुई है।

इसे अपने दिलों में उतर आने दो, और तब आप अनुभव करोगे कि आप स्वाधीन हैं, तब आप अपना जन्मस्वत्व लौटा पाओगे।

"ये ब्राह्मण-वर्ग, वेद, सब कुछ वही आत्मा है", यह ईश्वरीय नियम है। यदि किसी भौतिक पदार्थ पर आप उसी

के लिये भरोसा या निर्भर करोगे, तो वेद और विधि (दैवी-विधान) के कथनानुसार आपको परास्त होना पड़ेगा। आपको अपनी इच्छित वस्तुओं से परे होना चाहिये। यही विधान है। जब किसी महान् पुरुष या किसी अति शक्ति-शाली शासक के सामने आप पहुंचते हो और उसके शरीर या उसके व्यक्तित्व पर आप भरोसा करने लगते हो, तब, वेद का कथन है, तुम बहुत ही निर्बल नरकुल का सहारा लेते हो और आप गिर पड़ोगे। आप पाप करते हो, क्योंकि उस की सच्ची वास्तविकता या आत्मा की अपेक्षा आप उसके शरीर को अधिक महत्त्व देते हो। सत्य वस्तु के स्थान पर आप झूठे रूपरंग को बैठाते हो। आप अन्तर्गत परमेश्वर को, भीतर के आत्मतत्त्व को भूठा करते हो। आप प्रतिमा पूजते हो, आप शरीर की आकृति की उपासना करते हो, आप की पूजा केवल मूर्ति पूजा है, न कि परमात्मा या ईश्वर पूजा, और आपको इसका परिणाम-स्वरूप व्यथा और पीड़ा भोगना पड़ेगी। यही दैवी-विधान है। वेद कहते हैं कि अपने सांसारिक कामों के करने में भी भीतर के परमेश्वर या आत्मा पर दृष्टि रक्खो। लोगों को चाहिये कि सांसारिक कामों को कम महत्त्व का मानें, उसे स्वप्न मात्र समझें, न कि अन्तर्निहित सत्य या आत्माके समान महत्त्वपूर्ण समझें। तत्त्व को व्यक्तित्व से अधिक समझो। मित्र का चित्र उसी चित्र की खातिर नहीं बल्कि मित्र की खातिर प्यारा होता है। मित्र चित्र से अधिक प्यारा है। पदार्थों के सम्बन्ध में स्वयं पदार्थ की अपेक्षा तत्त्व को ही अधिक देखना चाहिये। ऐसा करने से सांसारिक सम्बन्ध और सांसारिक काम बड़ी मधुरता से, सरलता से, अविषमता से चलेंगे। अन्यथा संघर्ष, दिक्कत और क्लेश होगा। यही विधान है।

यहाँ पर हम एक कहानी कहेंगेः—

एक छोटे गाँव में एक दीवानी औरत रहती थी। उसके पास मुर्गा था। गाँव के लोग उसे छेड़ा करते थे, उसके नाम धरा करते थे, और उसे बहुत परेशान करते और क्लेश पहुँचाते थे। अपने पास रहने वाले अपने गाँव के लोगों से उसने कहा, "तुम मुझे तंग करते हो, तुम मुझे हैरान और दुःखी करते हो; देखो, अब मैं तुमसे बदला लूँगी।" पहले लोगों ने उसके कहने पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह चीखी, "गाँव वालों, खबरदार! सावधान! मैं तुम पर बड़ी सख्ती करूँगी"। उन्होंने उससे पूछा कि तू क्या करने वाली है। उसने कहा, "मैं इस गाँव में सूर्य न उदय होने दूँगी"। उन्होंने उससे पूछा कि किस तरह वह ऐसा करेगी। उसने उत्तर दिया, "जब मेरा मुर्गा बाँग देता है, तब सूर्य उदय होता है। यदि तुम मुझे इसी तरह दिक करते रहोगे, तो मैं अपना मुर्गा लेकर दूसरे गाँव को चली जाऊँगी, और तब इस गाँव में सूर्य न उदय होगा"।

यह सही है कि जब मुर्गा बाँग देता था तब सूर्य उदय होता था, किन्तु मुर्गे की बाँग सूर्योदय का कारण न थी। कदापि नहीं। उसे बड़ा कष्ट था, उसने गाँव छोड़ दिया और दूसरे गाँव को चली गयी। जिस गाँव में वह गयी, वहाँ मुर्गा बोला और उस गाँव में सूर्योदय हुआ। किन्तु जिस गाँव को वह छोड़ आई थी उसमें भी सूर्य उदय हुआ। इसी प्रकार मुर्गे का बाँग देना आपकी अभिलाषाओं की मँगनी और आह भरी प्रकृति है। आपकी अभिलाषायें मुर्गे की बाँग की तरह हैं, और आपकी इच्छित वस्तुओं का आपके सामने आना सूर्योदय के समान है। इच्छित वस्तुओं की चाह या उत्कट अभि-

लापा का उत्थान,शासन नियंत्रण औरनियमन एक अनन्त या शुद्ध आत्मा रूप सूर्य के द्वारा होता है। सच्चा स्वरूप या शासक सूर्य ही है, जो सुबह या शाम, दिन या रात को उत्पन्न किया करता है। इसी शुद्ध आत्मा, रूप अनन्त वस्तु द्वारा सब सांसारिक व्यवहार परिचालित और अनुशासित होते हैं। यह इन्द्रियों में प्रवेश कर जाता है। यह तार खींचने वाला उन सूर्यों के सूर्य और प्रकाशों के प्रकाश स्वरूपसे नियंत्रित होता है। यह याद रक्खो।

साधारणतः लोग ये सब बातें तुच्छ, भिखारी, भुक्खड़, स्वार्थी अपने आप पर आरोपित करते हैं। यह भूल न करो, कृपया इससे बचो। जाँचो तो। जो सूर्य मुर्ग की आँख में प्रवेश करता है, और उसका गला खोल कर उससे बाँग दिलवाता है, प्रातःकाल को सुशोभित करने वाला भी वही सूर्य है। किन्तु मुर्ग की बाँग और सवेरे का होना वास्तव में सूर्य की सुख-प्रद गर्मी और शक्ति द्वारा शासित या सम्पादित होता है। एक ओर इन जीवित पदार्थों को, और दूसरी ओर अपने विचारों को देखो, ये सब उसी सूर्यों के सूर्य, प्रकाशों के प्रकाश, वास्तविक स्वरूप,आत्मा, शुद्ध अपने आप से शासित, नियंत्रित और व्याप्त होते हैं। इस तत्त्व को जानो और स्वाधीन बनो। मिथ्या आरोपण मत करो। ग़लत अर्थ न निकालो। पदार्थों को ही सच्चा मत समझो। जब हम वस्तुओं को ही पीड़ा और रंज का असली कारण समझते हैं, तब हमारा विश्वास भ्रान्त है। ऐसा समझो, ऐसा अनुभव करो, और सब चीज़ों को एक गहरा मज़ाक, महान नाटकीय अभिनय (खेल) मानो। कोई क्लियोपैट्रा (Cleopatra) या मैकबैथ (Macbeth) का अभिनय (खेल) भले ही करे, किन्तु अस-

लियत में वह आत्मघाती या नरघाती नहीं है। वह राजा या रानी नहीं है । वह केवल अभिनेता (Actor) है । और वह अमुक अमुक भलामानुस है ।

इसी तरह, आप कोई भी काम करो, पर यह न भूलो कि आपका सच्चा स्वरूप परमेश्वर है । जान लो कि "मैं हूं" निर्विकार है- वही सम्पूर्ण आनन्द है, समग्र सुख है। इसे न भूलो। इसे समझो और मुक्त या स्वतंत्र हो जाओ।

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद् ग्रहणाय, दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ७ ॥
(बृह० उप० अ २ ब्रा० ४ मं० ७)

"अब जिस तरह ढोल का शब्द, जब वह पीटा जाय, बाहर से नहीं पकड़ा जा सकता, किन्तु शब्द तभी पकड़ा जाता है जब ढोल या ढोल का पीटने वाला पकड़ा जाता है"। (इसी प्रकार) इच्छा के सब भौतिक पदार्थ तभी पकड़े जा सकते हैं जब कि वह, जो उनकी उत्पत्ति का मूल है और जिससे वे निकलते हैं, पकड़ा जाय ।

स यथा शंखस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ् शब्दाञ् शक्नुयाद् ग्रहणाय; शंखस्य तु ग्रहणेन शंखध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥

"जिस प्रकार शंख की ध्वनि, बजते समय, बाहर से नहीं पकड़ी जा सकती, किन्तु ध्वनि तभी पकड़ी जा सकती है जब शंख या शंखका बजाने वाला पकड़ लिया जाय"।

(इसी प्रकार) जिसकी श्रद्धा से पकता है, उसकी सब इच्छायें परिपूर्ण हो जाती हैं । उसे कभी कोई धोखा न देगा। उसे कभी कोई पीड़ा या कष्ट प्राप्त न होगा ।

स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमेवं सर्वेषां स्पर्शानामं त्वगेकायनम्, एवं सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनम्, एवं सर्वेषां रसानां जिह्वैकायनम्, एवं सर्वेषां रूपाणां चक्षुरेकायनम्, एवं सर्वेषां शब्दानां श्रोत्रमेकायनम्, एवं सर्वेषां संकल्पानां मन एकायनम्, एवं सर्वासां विद्यानाम् हृदयमेकायनम्, एवं सर्वेषां कर्मणां हस्तावेकायनम्, एवं सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनम्, एवं सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनम्, एवं सर्वेषामध्वनां पादावेकायनम्, एवं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ ११ ॥

"जिस तरह जल मात्र का केन्द्र समुद्र है, इसी प्रकार सब स्पर्शों की त्वचा, सब रसों (स्वादुओं) की जिह्वा, सब गन्धों की नाक, सब रंगों का नेत्र, सब शब्दों का कान, सब संकल्पों का मन, सब विद्या का हृदय, सब कर्मों का हाथ, सब गतियों का पैर, और सब वेदों की वाणी केन्द्र वा गति है।

उसी तरह सम्पूर्ण संसार और संसार के सब पदार्थों का केन्द्र निज स्वरूप, पवित्र आत्मा में है। सब रंगों का केन्द्र भी उसी में है। सब शब्दों, रंगों, रसों, इन्द्रियों द्वारा कर्मों का अपना केन्द्र केवल आत्मा या निजस्वरूप में मिलता है। उसी से हरेक वस्तु निकलती है।

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते, न हास्योद्ग्रहणायेव स्यात्। यतो यतस्त्वाददीत लवणमेव। एवं वा अर इदं महद्भूत मनन्तमपारं विज्ञानघन एव, एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमि, इति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १२ ॥

"पानी में डाला जाने पर निमक का ढेला जिस तरह गल जाता है और फिर निकाला नहीं जा सकता, किन्तु सब

पानी (पानी) इसमें निमक का ही स्वाद मिलता है, उसी तरह सचमुच, हे मैत्रेयी, यह अनन्त, निसीम, महद्भूत, जो विज्ञान स्वरूप मात्र है, इन तत्वों से आविर्भूत होता है और फिर इन्हीं में विलीन हो जाता है। हे मैत्रेयी, मैं कहता हूं, जब वह चला जाता है, तब कोई संज्ञा नहीं रहती"। यह याज्ञवल्क्य ने कहा। इन तत्वों का अनुभव हो जाने पर मनुष्य की उससे एकता हो जाती है, तब वह नाम और रूप के आश्रित नहीं रहता।

स होवाच मैत्रेयी, अत्रैवमा भगवान मूमुहत् 'न प्रेत्य संज्ञास्ति', इति।

तब मैत्रेयी ने कहा, यह कह कर आपने मुझे भ्रम में डाल दिया है कि "जब वह चला जाता है, तब उस (प्रेत) की संज्ञा नहीं रहती"।

मैत्रेयी के मन में सन्देह हुआ कि यदि यह आप ही सब क्लेशों का लाने वाला है, यदि यही कष्ट और रंज तथा प्रत्येक उत्पत्ति का कारण है, यदि हमारा मन कुछ भी नहीं है, यदि हमारा व्यक्तित्व जब विनष्ट हो जाता है, तब तो अवश्य हमारा पूर्ण लोप है। इसलिये उसने कहा, "मैं लोप नहीं चाहती। आप का यह अपना आप किस काम का जबकि वह विलोप, मृत्यु, विनाश रूप है? मैं इसे नहीं चाहती, यदि सर्वस्व खोना पड़ेगा, तो भी मैं इसे नहीं चाहती"।

सहोवाच, न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा, अर इदं विज्ञानाय ॥ १३ ॥

यत्रहि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं शृणोति, तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं विजानाति; यत्र वा अस्य

सर्वमात्मैवाभूत, तत् केन कं जिघ्रेत्, तत् केन कं पश्येत्, तत् केन कं शृणुयात्, तत केन कमभिवदेत्; तत केन कं मन्वीत, तत केन कं विजानीयात्? येनेदं सर्वं विजानाति, तं केन विजानीयात्? विज्ञातारमरे केन विजानीयात्? ॥ १४ ॥

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—"ऐ मैत्रयी, मैंने भ्रम में डालनेवाली कोई बात नहीं कही। प्रिये! जानने के लिये यह काफी है।

क्योंकि जहां यह द्वैत सा होता है, वहीं एक दूसरे को सूंघता है, एक दूसरे को देखता है, एक दूसरे को सुनता है, एक दूसरे का अभिवादन करता है, एक दूसरे को मनन करता है, एक दूसरे को जानता है। किन्तु जब इसका आत्मा ही यह सब कुछ हो गया, तो कौन किस को सूँघे, कौन किस को देखे, वह किससे किस को सुने, कैसे वह किसी का अभिवादन करे, किस से किस को मन में लावे, किस से किस को जाने? जिस से यह सब वह जानता है उसको वह किससे जाने? प्रिये, वह विज्ञाता (अपने) को किस से जाने?"

न सुनने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई मनुष्य बहरा और गूँगा हो, और दूसरा यह कि आप से बाहर (परे या पृथक) कोई शब्द ही न हो। (ऐसे ही) न देखने के दो हेतु हो सकते हैं। एक तो आप का अन्धापन, और दूसरे आप के सिवाय किसी और वस्तु का न होना जिसे आप देखें। न सूंघने के भी दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो आप में सूँघने की इन्द्रिय का न होना, दूसरे आप से बाहर सूँघी जाने वाली किसी वस्तु ही का न होना। इस तरह यहाँ मैत्रेयी ने यह शंका की है कि यदि

(अद्वैत अवस्था में) वास्तविक वा शुद्ध आत्मा से ही हमें सुनना, देखना, सूँघना, रसास्वादन करना पड़ता है, तो (ऐसी अवस्था में) वस्तुतः क्या हम बहरे और गूँगे या अंधे तो नहीं हो जाते ? इस शंका का समाधान यह कह कर किया गया है कि अपने भीतर शुद्ध-आत्मा में देखने के कारण ऐसा नहीं है; बल्कि इस लिये है कि अनन्त स्वरूप (आत्मा) के सिवाय कोई और वस्तु है ही नहीं, जिसे आप देखें। यह बात नहीं है कि सुनने की शक्ति न रहने के कारण आप कुछ नहीं सुनते. बल्कि कारण यह है कि सुनने को कुछ है ही नहीं। न कोई द्वैत है, न अन्त है। ऐसे ही न कोई पदार्थ हैं जिनका आप मनन करें; वहां आप कुछ नहीं विचारते, इसका कारण यह नहीं है कि आपकी विचार-शक्ति जाती रही, बल्कि इस लिये कि आत्मा के सिवाय कोई अन्य पदार्थ है ही नहीं। फिर, यह दिखलाया गया है कि वहां केवल अनन्त आत्मा होने से वही अनन्त आत्मा कानों के सुनने और नाक के सूँघने का कारण है। यह सब कुछ आत्मा की ही शक्ति के कारण से है। नेत्र देखते हैं तो आत्मा के ही प्रताप और प्रकाश के कारण। एक अनन्त आत्मा ही सकल इन्द्रियों के अस्तित्व का हेतु है।

मन जब उस अनन्त अवस्था में, उस अवर्णनीय लोक में पहुँच जाता है, तब (अपने से भिन्न कुछ और) वह अनुभव नहीं कर सकता; क्योंकि विचार वहां प्रवेश नहीं कर सकता। विचार-शक्ति उसे कैसे वेध सकती है जिसके द्वारा उसका शासन होता हो ?

कल्पना करो कि हमारे पास दो फलटों वाला एक चिमटा है। यह चिमटा आपकी अँगुलियों के अधिकार में होता है।

चिमटे के फलटे आप की अँगुलियों के मजबूत चुंगल में हैं, और इन फलटों से आप जो चीज़ चाहें पकड़ सकते हैं। किन्तु फलटों में यह ताकत नहीं है कि पलट कर आप की उन अँगुलियों को पकड़ लें जो इन फलटोंको पकड़ कर चलाती हैं।

इसी तरह आप की चेतना या बुद्धि, मन या दिमाग, चिमटे के फलटों की तरह हैं, किन्तु यह चिमटा विलक्षण प्रकार का है। साधारणतः चिमटों में दो फल या फलटे होते हैं, किन्तु इस चिमटे के तीन फलटे वा चंगुल हैं। एक चुंगल तो 'क्यों' का है, दूसरा चुंगल 'कब' का है, और तीसरा फलटा (चुंगल) 'कहां' का है, अर्थात् देश, काल और वस्तु का है।

किसी बात या तथ्य को पूरी तरह समझने का क्या अर्थ है?

पूरी तरह से किसी चीज़ को समझने का अर्थ उसे इन चुंगलों से, इन फलटों से मज़बूती के साथ पकड़ना है। जब किसी चीज़ का "क्यों", "कब", और "कहाँ" आप जान लेते हैं, तब आप उसे समझ जाते हैं, उसका बोध हो जाता है। यों कह सकते हैं कि तब वह आपके, बुद्धि के, अधीन स्थित है। आपकी बुद्धि उसमें और उसके मध्य में होकर स्थित है, और वह बुद्धि के अधीन स्थित है।

बुद्धि, समझ, तीन चुंगलवाले विचित्र चिमटे के समान है। बुद्धि से सब चीजें समझी जा सकती हैं, किन्तु इसके साथ ही यह बुद्धि, आपका यह चित्त, खुद चिमटे की तरह शरीर रूपी "राज्य" के इस विचित्र "शासक" व विचार कर्त्ता के शासनाधीन है। समझ इस विचित्र शक्ति (आत्मा) के शासन के अधीन है, उसके प्रभुत्व में है।

क्या आपकी बुद्धि, आपका चित्त स्वतंत्र है ? यदि है, तो वह सुषुप्ति की दशा में, गाढ़ निद्रा की अवस्था में, क्यों नहीं है ? यदि वह स्वतंत्र होती तो सब दशाओं में ऐसी ही रहती। वह स्वाधीन नहीं है। बुद्धि, समझ, एक उच्चतर शक्ति के वश में है। बुद्धि में यह बल नहीं है कि वह उलट कर अनन्त, वा शुद्ध आत्मा को पकड़ ले, जिसके अधीन कि वह स्वयं है। वह आप से यह प्रश्न नहीं कर सकती, "क्यों, कब और कहाँ तुम थे ?" बुद्धि "असली" व शुद्ध "आत्मा" से प्रश्न करने की शक्ति नहीं रखती। बुद्धि आत्मा को समझ या ग्रहण नहीं कर सकती। आत्मा बुद्धि से ऊपर है, परे है।

बुद्धि यद्यपि आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकती, तथापि वह अपने को उसमें वैसे ही निमज्जित कर सकती है जैसे बुलबुले समुद्र में। बुद्बुदे समुद्र से बाहर नहीं निकल सकते, किन्तु वे फूट कर उसमें डूब सकते हैं। इसी प्रकार बुद्धि आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकती किन्तु वह अपने को आत्मा में लीन कर सकती है। और वस्तुतः माया का यही सारांश और तात्पर्य है। बुद्धि आत्मा या परमेश्वर से यह नहीं पूछ सकती, "क्यों, कब और कहाँ तुमने दुनिया की सृष्टि की ?" साहसपूर्वक वह प्रश्न नहीं कर सकती।

यह आत्मा, तत्त्व का सच्चा समुद्र, यह शासक और परिचालक स्वरूप, यह अनुभव करने योग्य, निदिध्यासन करने योग्य, देखने योग्य और जानने योग्य है जिससे अनन्त के साथ एक होजाय। यह सच्चा स्वरूप या आत्मा "मैं हूं" कहलाता है। यह सच्चा स्वरूप वा पूर्ण "अहं" देश, काल वस्तु से परे है। इस पूर्ण, सच्चे स्वरूप का निरूपण ॐ से किया जाता है। ॐ का अर्थ है 'मैं हूँ', और ॐ को

उच्चारण करते समय आपको किसी दूसरे के प्रति सम्बोधन नहीं करना पड़ता। ॐ को उच्चारण करते समय यह न समझो कि आप अपने से बाहरवाले किसी दूसरे को पुकार रहे हो। ॐ को उच्चारण करते वक्त आप अपने को इस सच्चे "मैं हूँ" से एक समझो। ऐसे दृढ़ भाव से चित्त तत्त्व में निमग्न हो जाता है। इस पक्के विश्वास से, चित्त के इस सजीव ज्ञान से, चित्त मानों एक जल-बुदबुदा सा होजाता है, जो तत्त्व के अगाध "समुद्र" में फूट जाता है। आत्मानुभव का यही मार्ग है। मन के इस सजीव ज्ञान का तुम्हें पकड़ लेना, तुम्हारे मिथ्या अहंकार का हरे लेजाना, ही तुम्हें स्वाधीन कर देने या तत्व की प्राप्ति का मार्ग है।

सच्चा "मैं हूँ" इस शरीर में और उस शरीरमें (अर्थात् प्रत्येक देह में) दिखाई देता है। सत्य स्वरूप "मैं हूँ", शासक परिचालक, नियामक, अनन्त आत्मा इस नन्हे अणु में भी वैसा ही है जैसा विराट, शक्तिशाली समुद्र में। सब देश-काल-वस्तु में एकसाँ है। ठीक ऐसा समझो, अनुभव करो कि आप वह सत्य स्वरूप "मैं हूँ" हो, अनुभव करो कि आप अनन्त, अविनाशी आत्मा हो और फिर देखो कि कैसा रूपान्तर होता है, आपकी स्थिति में कैसा महान परिवर्तन हो जाता है। यही विचारने को आप यावत् दिशा में व्याप्त हो, कि आप सब काल में हो- कि आप वह आत्मा हो जो समग्र दिशा का आश्रयदाता है, कि अनन्त देश आप पर निर्भर है, आप उसे उठाये हुए हो। अनन्त देश, अनन्त काल, अनन्त वस्तु, अनन्त शक्ति, अनन्त तेज, बल-यह मैं हूँ। यह तथ्य अज्ञान का नहीं है। अपने को मैं जो कुछ भी समझता हूँ उसका वास्तव में यह कारण है, और यही कारण सदा

आपका भी है। ऐसा विचार करो और आप ऊपर उठ जाते (उन्नत हो जाते) हो, आप सकल स्वार्थमय उद्देश्यों से मुक्त हो जाते हो। इस पर निश्चय करो, और यह (निश्चय) सब चिन्ताओं और रंजों को छिन्न-भिन्न कर देता है; सब द्वेषों, क्षोभों, दिक्कतों और उत्पातों से आप छूट जाते हो। अनुभव करो कि आप वह " मैं हूँ " हो। वही आप हो।

आप की बुद्धि को अपने कारण से पूछने का कोई अधिकार नहीं है, कारण से अपने को एक करने का कोई अधि- नहीं है।

यह दुपट्टा या उपरना लो। अगर यह किसी चीज़ से तद्रूप होता है, तो उसे अवश्य उस रेशम से ही तद्रूप होना चाहिये कि जिसका यह बना है, अथवा जिसमें इसका प्रादुर्भाव हुआ है। अपनी लम्बाई, चौड़ाई, या मोटाई से इसे अपने को तद्रूप करने का कोई अधिकार नहीं है।

इसी तरह, यदि बुद्धि को अपने को किसी से तद्रूप करना है तो अपने ही तत्त्व से, अपनी सत्य प्रकृति से ही (जिसकी कि वह बनी हुई है) उसे तद्रूप होना चाहिये। उसे बुदबुदा हो जाना चाहिये, और फूट कर महान् समुद्र, आत्मा " मैं हूँ " से एक हो जाना चाहिये। देह से उसकी एकता नहीं की जा सकती। देह तो केवल एक कार्य, परिणाम है। और इसीलिये देह से अपने को एक करने का बुद्धि को कोई अधिकार नहीं है।

अरे! सत्य ईश्वरको, आत्माको, इस श्रेष्ठ शक्ति को सांसारिक सम्बन्धों, दुनयवी मामलों से एक नहीं किया जा सकता। तुम वही श्रेष्ठ परमात्मा हो। सत्य तत्त्व हो। यह जानो, यह विचारो, यह अनुभव करो, और (इस तरह) सकल क्लेशों तथा शोकों से परे हो जाओ वा छूट जाओ।

I. The dear ones part,
The foes depart,
Relatives die,
*Get snapped all ties
Our systems gay
May have their day
And pass away,
The trees decay ;
Birds merrily play
But fall a prey
The flowers fade
Light turns to shade,
Our loves are changed,
Beauties deranged,
Names, fames do wane,
All glory is vain !
Fickle, transient is all
This show, it palls
All objects sweet
Attract but cheat,
They treat, deceive, defeat

II. Any thing the best
We choose for rest ;
The last, the first,
That we choose to trust
When it feels our toes

---

* (Get snapped the ties) alternate reading.

(नोट—इस भाग के प्रथम उपदेश-"नित्य जीवन का विधान-" में जो अंग्रेज़ी कविता थी उसका अनुवाद शीघ्र न होने के कारण उसे अब यहां दिया जाता है)

१. बिछुड़ते हैं प्रिय जन,
अलग होते दुश्मन,
मरे जाते हैं बन्धु,
मिटते हैं बन्धन॥
हमारी प्रणाली जो सुन्दर बनी है,
भले ही रहे वा बिगड़ जावें इकदिन॥
नसेंगे य कद्‌प; औ कल रव मचाते
ये पक्षी भी दुनियां से उड जायं इकछिन।
मुरझ जायंगे फूल फूले हैं जो आज;
छाया से ज्योति का होता परिवर्त्तन॥
बदलतीं हमारी प्रणय प्रीतियां भी;
वो सुन्दर स्वरूपों का होता विमर्दन॥
नाम सम्मान होते दुनियां के नष्ट,
सब दिखावट, विभव, ठाट हैं व्यर्थ भ्रष्ट।
क्षणिक हैं सभी, है न इनमें कोई बल,
है दुनियां तमाशा जो लेती हमें छल॥
ये सुन्दर मोहक वस्तु सभी प्यारी जो मन को लगतीं है
पहले अपना, मन हाथ में कर, छल से फिर मार गिराती हैं

२ चाहे सर्वोत्तम कुछ होवे, जिसको आधार बनाते हैं,
होवे वह प्रथम चाहे अन्तिम जिस पर विश्वास बढ़ाते हैं।
जैसे हो निर्भर होते हम, वे धोखा दे दुर जाते हैं।
हम जैसे प्यार लगें करने, प्रिय पात्र तुरत नस जाते हैं

Lo ! down it goes
No sooner we love
Than things dissolve
Of confiding we think
And in foam we sink.

III. Is all at last
A dream of past ?
Is nothing true
He, I, or you ?
Is all a myth
This kin and kith ?
Oh ! where shall I turn ?
To whom return
The heart that burns
The breast that yearns ?
Oh ! Unrequitted Love !
Oh ! innocent stricken Dove !

IV. See, in this scene of changing shows
There is a changeless One that glows,
In seeming death, decay, and pain
It changes dress but comes again,
Love That, nor dress ; love Him, nor things,
He changes the dress and flings ;
Old garments gone
Fresh forms puts on

हम सोचा (करते) मन ही मन, 'इनपर विश्वास करें मनभर।'
इतने में बुल्ला फूट पड़े, हम डूब चलें वस मौक़े पर ॥

३ क्या सचमुच में जो कुछ भी है—
सब अतीत का स्वप्न है।
क्या 'मैं', 'तुम', 'वह' का भेद सभी,
कुछ भी नहीं किञ्चित् सत्य है ॥
क्या प्रिय परिजन भी मिथ्या हैं?
हा दैव! किधर तब मैं जाऊं?
यह व्याकुल चत्त, हृदय विदग्ध—
किसे समर्पित कर आऊं?
दुनियां में है प्रेम निरर्थक, कोई न प्रतिफल हाय!
'हंस' विचारा दोष बिना ही, यों ही मारा जाय!!

दुनियां के सब नज़ारे
कैसे बदल रहे हैं;
पै इन में एक अविकल
देखो चमक रहा है।
इन भासमान भरने
दुख और दर्द में वह
पोशाक भर बदल कर
फिर फिर प्रकट रहा है ॥
उस पर ही प्रेम रक्खो
न कि वस्तु, आवरण पर
नित आवरण बदल कर
वह दूर कर रहा है ॥
प्राचीन वस्त्र छूटें;
नित्य स्वच्छ सुन्दर पहने

He is neat and clean
And whenever seen
New Forms he wears
Unthought of, rare.
One order passed, another came,
In both is He, the same.
How sweet is loss, privation !
He bears Himself, 'tis Revelation.
How sweet His stripping grace !
Still sweeter the new face !
The sky, the breeze, the river, rose
Such veils of gauze for self He chose.
Hide as Thou mayst, I feel Thee,
Covers don't conceal but reveal Thee.
The forms are chased by one another
That we may see the One they cover.

V. O what a rosary !
This world, I see.
One bead is told,
You say it dies ;
Another passes and another and another,
Yet the thread survives

देखो अचिन्त्य अनुपम
नव रूप धर रहा है॥
पहले प्रपंच टूटे,
नूतन प्रकट हुए हैं,
दोनों ही वस्तुओं में
वह एक सा बसा है॥
दुःख, हानियों में कैसी
माधुर्य्य की घटा है,
इन में ही व्यक्त होता,
यों ही वह खुल रहा है॥
उसकी यह नग्नता की
शोभा मनोहरा क्या!
पर नव वदन छुटा तो।
उस से मधुरतरा है॥

पर्दा उसने चुना है निज मुख ढकने को यह झिंझरी दार।
मन्द पवन,औ गगन, नदी, औ कुसुम आदि का सब विस्तार॥
चाहो जैसे, छिपो भले ही, मुझसे छिपना है दुश्वार।
पर्दे तुम्हें नहीं छिपाते, उलटे करते खूब उघार॥
एक रूप के बाद दूसरे इसी लिये बस आते हैं—
देख सकें हम उसको जिसको वे इस तरह छिपाते हैं॥

५ अहा, संसार एक माला है,
भरा जिसमें अनेक दाना है॥
इक दाने को देख तुम नसते,
"नहीं कोई तत्त्व इनमें" कहते॥
एक के बाद इक बिगड़ता है
किन्तु धागा कभी न घटता है॥

That thread Divine
Is mine, is mine!
That golden thread I cherish;
Let pass the forms or perish.

VI. These fleeting forms—
Mere morning charms!
They dawn and die—
Mayavic lies!
These things that seem
Are nothing but dreams,
Of That Eternal Sun
The changeless one.

VII. On foes and friends
I won't depend
I won't recline
On *shows* divine.
For bodily health
Or earthly wealth,
What care I?
My Love and I!
To the seaming things
I will not cling
These forms of dress—
Mere pawns of chess
I'll see them all
Not moved at all,

कैसा-सुन्दर दिव्य आगा है,
हमारा है, वही हमारा है॥
है व स्वर्ग सूत्र पै मेरा दिल—
क्यों न 'रूप' जांय मिट्टी मिल॥

६ प्रभात कालीन माधुरी ज्यों
क्षणिक सदा 'नाम रूप' ही त्यों।
प्रपंच माया ये झूठ रचती—
अभी बनी है, अभी बिगड़ती॥
अनन्त है जो रवि तेजवाला,
है जो कभी न बदलने वाला।
उस एक के ये स्वप्न भर हैं
पदार्थ जो सर्व भासते हैं॥

दोस्त दुश्मनों पै रक्खूंगा,
मैं हरगिज़ विश्वास नहीं।
दिव्य दर्शनों पर भी होगा,
हरगिज़ मुझे भरोस नहीं॥
शारीरिक नैरोग्य तथा,
पाने को पार्थिव वैभव भी।
मैं पर्वाह भला क्या करता?
मैं औ मेरा प्यारा भी!!
जो हैं भासमान दुनियां में,
उन पै कभी न भूलूंगा;
इन शतरंज पियादों, गुड़ियों,
को निर्मम हो देखूंगा॥

There, that and this
I will not miss.
My Love is found,
It's all around.
Oh! Him I trust
Love Him I must.
The One in plurality,
The only Reality!
My all in all
On Him I call!
My friend so true
My *chela*, *Guru*,
My father, child.
My fireside!
My husband, wife
Myself, my life
My only right
The Light of lights
My storm, my calm,
My balm, my Rama.
Om!

मेरा प्यारा मिला मुझे,
अब उसको कहीं न खोऊंगा;
है सब ओर; उसे मानूं मैं,
प्रेम में उसको देऊंगा ॥
अनेकता में है 'एक' तत्त्व जो,
केवल है जो सत्य वही।
है सर्वस्व हमारा वैभव;
टेर रहा हूं उसको ही ॥
ऐसा पक्का दोस्त वही है,
चेला औ गुरु भी मेरा,
जनक हमारा, प्यारा बच्चा,
वही-वही घर भी मेरा ॥
प्राण-वल्लभा, अथवा पति मम,
स्वयं, और जीवन मेरा *
वही दीप्ति की दीप्ति अहो!
है केवल मात्र स्वत्व मेरा ॥
झंझानिल और शान्ति हमारी,
जीवन-मूरि हमारा 'राम'
अनेकता में है "एक" तत्त्व जो
वही, वही है जो सतनाम ॥

॥ ओ३म् ॥

---

* (अथवा पाठान्तर से) – मैं औ जीवन धन मेरा।

पत्र-मंजूषा ।

(नोट—ये पत्र उर्दू रिसाला अलिफ के नं० ४ के अन्त में प्रकाशित हैं, और रिसाला अलिफ की प्रथम जिल्द के सब लेख तो ग्रन्थावली में छप चुके थे, केवल ये पत्र ही छपने रह गये थे, जिन का उलथा अब यहां दिया जाता है ।)

मैनेजर रिसाला अलिफ की ओर से ।

प्रिय पाठको ! अलिफ़ के तीन लेक्चरों के बाद जब चौथी बेर उपदेश आरंभ हुआ, तो वह अभी आधा समाप्त होने न पाया था कि "आनंद" जिसपर पहला लेक्चर था और जिसकी खोज में सारा संसार भटकता फिरता है, "राम" के सामने आकर हाथ जोड़े सेवा में खड़ा हो गया। और स्वीकार करने लगा कि "निस्संदेह मैं वही आपका अपना आप हूँ, आप ही से प्रकट हुआ हूँ, नहीं नहीं, आप ही मैं हूँ।" और, "राम" से अभेद होकर इस प्रकार राग अलापने लगा–

जो सुख नित्य प्रकाश विभु नाम रूप आधार ।
मति न लखे जेहि मतिलखे, सो मैं शुद्ध अपार ।
अवधि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश ।
विधि, रवि, चंदा, वरुण, यम, शक्ति धनेश गणेश ॥
जा कृपाल सर्वज्ञ को हिय धावत मुनि ध्यान ।
ताको होत उपाधि ते मो में मिथ्या भान ॥
जेहि जाने बिन जगत मन हु जेवरी साँप ।
नसे भुजंग जग जेहि लहे, सोऽहं आप ही आप ॥

जब यह दशा होगई, और चारों ओर आनंद तरंगाइत हो गया, संसार सागर में दुःख के स्थान पर सुख की लहरें लहराने लगीं, समय ने पल्टा खाया; तो "राम" को यही भाया कि बन को सिधारें। "नारायण" "ओम्" की सुरीली

ध्वनि उच्चारण करते हुए, 'अलिफ़' का झंडा हाथ में लिये संग पधारे। संसार के रास-मंडल में कृष्ण की भाँति जब "राम" लोगों की दृष्टि से एक दम अंतर्द्धान हुए, तो नाद हुआ कि प्रत्येक के हृदय में, प्रत्येक के मस्तिष्क में, प्रत्येक की आँखों में मेरा निवास है, अमीर और क्या फ़क़ीर-राजा और क्या रंक-के नाम, रूप और नाड़ी नाड़ की विद्यमानता 'राम' ही के सहारे है। शरीरों की कोठरियों के भीतर बुरे या भले विचार परमाणुओं की भाँति मुझही प्रकाशस्वरूप की (Stray beams) प्रविष्ट रश्मियों में निवास रखते हैं।

"नहनो अकरबो इलह मिन हबिलुल वरीद।"

अर्थ—शाह रग (कंठ) से भी प्रभू समीपस्थ है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य।

तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः॥ (यजु० ईसा० मं० ५)

तात्पर्य—हम चल हैं, हम चल हैं नाहीं, हम नेड़े, हम दूर।
हम ही सब के अंदर चानन, हम ही बाहर नूर॥

१—ऐ तालिबाँ! ऐ तालिबाँ! मन बा शुमा हर जास्तम।
हम जलवागर दर दीदहा, हम मज़मरे-दिलहास्तम॥

२—ईं दूरी-ओ-महजूरियम, अज़ वहमे-पिंदारे-शुमास्त।
दर निस्बते-खुद बा शुमा, दरिया-व-मौज आसास्तम॥

३—बा हुस्ने-खुद दर बाख़्तम, मन नज़दे-इश्क़ो-आशिक़ी।
हम लैली ओ मजनू मनम, हम वामिक़ो उज़रा स्तम॥

४—गाहे नियाज़ ईमाने-मन, गह वे नियाज़ी-शाने-मन।
ईं हर दो मी ज़ेबद बमन, हम बंदा ओ मौला स्तम॥

५—हम सूरते-नासूतेम, हम मानी-ए-लाहूतेम्।
पिनहाँ तर ज़ पिनहाँ व हम पैदा तर अज़ पैदा स्तम॥

६—बर अक्से-रुख़म-ई जहाँ, दर पर्दा मीवाशम अयाँ।
चंदाँ कि बे पर्दा शवम, दर पर्दा-ए-अख़फ़ा स्तम॥

अर्थ—(१) ऐ जिज्ञासुओ! ऐ जिज्ञासुओ! मैं हर स्थान पर तुम्हारे साथ हूँ, तुम्हारी आँखों में मैं प्रकाशमान हूँ और तुम्हारे हृदयों में मैं छुपा हुआ हूँ।

(२) यह मेरी भिन्नता और केवल जुदाई तुम्हारी समझ की भ्रांति से है। तुम्हारे साथ मेरा संबंध नद और तरंग की तरह है।

(३) अपने सौंदर्य के साथ मैं प्रेम और प्रेमिकता की बाज़ी हारता हूँ, लैली और मजनूँ भी मैं हूँ और वामक और उज़रा भी मैं हूँ।

(४) कभी प्रार्थना मेरा ईमान है, कभी उदारता मेरा गौरव है, ये दोनों मुझको शोभा देती हैं, क्योंकि बंदा (जीव) और मौला मैं ही हूँ।

(५) जाग्रत् अवस्था और स्वप्न अवस्था की सत्यता मैं हूँ, क्योंकि गुप्त से गुप्त और प्रकट से प्रकट मैं हूँ।

(६) इस संसार के चलन के विरुद्ध मैं पर्दे में भी प्रकट हूँ, जितना कि मैं बेपर्दा (प्रकट) हूँ, उतना ही छिपाव के पर्दों में (छिपा) हूँ।

अहा! "राम" के समक्ष में क्या आनंद-भरे "ॐ" के सुरीले और मस्त राग गाए जा रहे हैं कि जहाँ दुःख और दर्द की आवाज़ की बिलकुल पहुँच नहीं। "राम" अपनी महिमा में मस्त हैं। आनंद ही आनंद चारों ओर से उमड़ा चला आ रहा है। अलबत्ता अपनी मस्ती उमड़ने के कारण या इधर का प्रेमपत्र जब कभी उधर पहुँचता है, उसके उत्तर में जो संक्षिप्त से उत्तर आते रहे हैं, वह नीचे क्रमानुसार पाठकों के सम्मुख उपस्थित किए जाते हैं।

पत्र-संख्या १

रात का वक़्त है बियाबां है।
खुशनुमा पर्वतों में मैदाँ है॥
आसमां का बताएं क्या हम हाल।
मोतियों से भरा हुआ है थाल॥
चाँद है मोतियों में लाल धरा।
अब्र है थाल पर रूमाल पड़ा॥
सर पे अपने उठाके ऐसा थाल।
रक़्स करती है नेचर-खुशहाल॥

* * *

बाद को क्या मज़ की सूझी है।
रामके दिल की बात बूझी है॥
पास जो बह रही हैं गंगा जी।
अबखरे उसके लदलदाते ही॥
ला रही लपक कर है राम के पास।
क्या ही ठंडक-भरी है गंगा-वास॥
फ़खरे-खिदमत से बाद है खुरसंद।
जा मिली बादलों से हो के बलंद॥
अब तो अटखेलियां ही करती है।
दामने-अब्र को उलटती है॥

* * *

लो लड़ाया वह पर्दा-ओ-रूमाल।
आसमां है दिखाया माला माल॥
शाद नेचर है, जगमगाती है।
आँख हर-चार सू फिराती है॥

क्या कहूं चांदनी में गंगा है।
दूध हीरों के रंग रंगा है॥
वाह ! जंगल में आज है मंगल।
सैर कर इस तरफ़ की, चल चल चल॥

ऐ जाँ ! बया बया कि ईं दुनियाये-दीगर अस्त।
आबे-दिगर, हवाय-दिगर, जाय दीगर अस्त॥

अर्थ—ऐ प्राण प्यारे ! इधर आ, इधर आ। यहां संसार ही और तरह का है, क्योंकि यहां का पानी निराला, हवा निराली और स्थान भी निराला है।

पत्र-संख्या २

आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है। टेक

गंगा का है किनार अजब सब्ज़ाज़ार है।
बादल की है बहार हवा ख़ुशगवार है॥
और ख़ुशनुमा पहाड़ पै वह चशमा सार है।
गंगा-ध्वनी सुरीली है, क्या लुत्फ़दार है॥
आ, देखले बहार कि कैसी बहार है !

बाहर निगाह कीजिये तो गुलज़ार है खिला,
अंदर सुरूर की तो भला हद कहां ? दिला !
कालिज क़दीम का यह सरे-मू नहीं हिला।
पढ़ाता मारफ़त का सबक़ मेरा यार है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है !

वक़्ते-सबाहे-ईद तमाशा तयार है।
गुलगूना मुँह पै मल के खड़ा गुल अज़ार है॥
शाहे-फलक से था जो हुई आँख चार है।

मारे शरम के चेहरा बना सुर्ख नार है ॥
आ, देखले बहार कि कैसी बहार है !

क़तरे हैं ओस के कि दुरों की क़तार है।
किरणों की उनमें बल थे नज़ाकत यह तार है ॥
मुरग़ाने-खुशनवा, तुम्हें काहे की आर है ?
गाओ बजाओ, शब का मिटा दिल से बार है ॥
आ, देखले बहार कि कैसी बहार है !!

साक़ी यह मै पिलाता है तुरशी को हार है।
हर वक़्त अपना यार भी अपने कनार है ॥
वाह ! क्या मज़े का खाने को ग़मका शिकार है।
दर्शन शराबे-नाब, सखुन दिल के पार है ॥
आ, देखले बहार कि कैसी बहार है !

मस्ती मुदाम कार यही रोज़गार है ।
गुलयाँ निगाह पड़ते ही फिर किसका ख़ार है।
क्यों ग़म से तू नज़ार है, क्यों दिल फ़िगार है ॥
जब राम क़ल्ब में तेरे खुद यारे-ग़ार है ।
आ, देखले बहार कि कैसी बहार है !

पत्र-संख्या ३

दसवां गृह अध्यास है नौ गृह का जो मूल।
जब लग देह-अभिमान है तब लग मिटे न शूल ॥
तब लग मिटे न शूल करे केती चतुराई।
देव यजे, जप यजे, न सुर कोइ होत सहाई ॥
कहे गिरिधर कविराय ज्ञान दृढ़ देवे चशमा।
मूल अविद्या नाश होय गृह रहे न दसवां ॥

देनी दमड़ी एक नहिं, लेने को न छ्दाम।

गाँठ बाँध नहिं चालते, फूटा एक बदाम ॥
फूटा एक बदाम न राखैं दूसरे दिन का ।
बिना अपने आप भरोसा और न जिनको ॥
कहैं गिरिधर कविराय रहे न बाकी लेनी ।
कीनो जमा हिसाब न निकसी कौड़ी देनी ॥

In no way can the overflowing joy of Rama be described. Peace reigns supreme here. Bliss fills the mind. There is heavenly cheerfulness, shedding its divine sun-shine all the time. The mental horizon is growing more and more clear every day. This betokens something very good and grand for India, nay, for the world at large.

While seeing a theatrical performance, people are apt to be deluded by the drama and they would be inclined to weep with the actors and laugh with them while looking at the stage if they had not the firm ground of reality, always beneath their feet, reminding them of what they actualy are. Just so while seeing the great tragedy of the world enacted, let the sublime Truth on which you stand always, put you in mind of your High Self and not allow you to be deceived.

Rama.

अर्थ—'राम' के भीतर से उमड़ते हुए आनंद का वर्णन किसी प्रकार से भी वस्तुतः नहीं किया जा सकता। हृदय में

शांति सब से बढ़कर राज्य कर रही है (अर्थात् अंतःकरण शांति से लबालब भरपूर है); मन आनंद से भरा हुआ है। 'राम' के भीतर ईश्वरीय (स्वर्गीय) आनंद उमंग मार रहा है, जिसकी ईश्वरीय किरणें (प्रकाश) प्रति समय चमक दमक रही हैं, हृदय का आकाश प्रति दिन अधिक से अधिक शुद्ध निर्मल हो रहा है। यह सारी अवस्था हिंदुस्तान वरन् समस्त संसार के लिये किसी अच्छे और उच्च शकुन को दिखलाती है।

थियटर (नाटक) का अभिनय देखते समय यह संभव है कि लोग उस नाटक से धोखा खा जायँ और नाटक करने वालों के साथ रोने और हसने लग पड़ें, विशेषतः उस समय जबकि वह इस बात को बिलकुल भूल जायँ कि यह जो कुछ सामने हो रहा है, केवल तमाशा या खेल है, इससे अधिक और कुछ नहीं। ठीक इसी तरह संसार की विपत्ति का नाटक देखते-समय धोखा खाया जाना संभव है, इसलिये उस उच्चतम तत्त्व (सच्चाई) को जिसके आश्रय तुम खड़े हो, हृदय में दृढ़ रूप से स्थिर रक्खो, और अपने स्वरूप को प्रति समय दृष्टि में रक्खो। इस प्रकार अपने आपको धोखे में न पड़ने दो।

जामे ज़ मए बाक़ी अज़ दस्ते खुश साक़ी।
बा कसरते-मुश्ताक़ी मय जोयमो मय रक़सम ॥
फ़ाश मीगोयमो अज़ गुफ़्ताए खुद दिल शादम।
साहबे-इश्क़मो अज़ हर दो जहाँ आज़ादम् ॥
मस्तो खराब मीरवम फ़िक्रे-जहाँ न मीखुरम।
बीम नदारम अज़ बला तन तलमला तला तला।

अर्थ — अमृत रूपी सुरा का प्याला शौंडिक (पूर्ण गुरु)

के हाथ से मैं अत्यंत प्रीति के साथ लेने की खोज में हूँ, और उसके प्रेम में नाचता हूँ। खुल्लम खुल्ला मैं यह कहता हूँ और अपने इस कहने से मैं प्रसन्न हूँ कि "मैं प्रेम-संपन्न (प्रेमी-रसिक) हूँ और दोनों लोक (लोक परलोक) से विनिर्मुक्त हूँ।

उन्मत्त हुआ मैं फिरता हूँ और विश्व की चिंता नहीं करता हूँ, और विपत्ति से बिलकुल नहीं घबराता हूँ, और यह स्वर "तन तलमला तला तला" गाता रहता हूँ।

पत्र-संख्या ४

सरोदो रक्सो शादी दम बदम है।
तफ़क्कुर दूर है और ग़म को रम है॥
अजब खूबी है, बेरूँ अज़ रक़म है।
यक़ीनन जान, तेरी ही क़सम है॥
मुबारक हो तबीयत का यह खिलना।
यह रसभीनी अवस्था जामे-जम है॥
मुबारक दे रहा है चाँद झुककर।
सलामों से कमर में उसकी ख़म है॥
पिए जाओ दमादम जाम भरकर।
तुम्हारा आज लाखों पर क़लम है॥
गुलों से पुर हुआ है दामने-शौक़।
फ़लक ख़ेमा है. कैवाँ पर अलम है॥
तेरे दीदों पै भूले से हो न शबनम।
कभी देखा सुना "सूरज पै नम है?" ॥
रखें आगे को क्या क्या हम न उम्मेद।
कि मारा गुमे-ग़म, पहला क़दम है॥
दिखाया प्रकृति ने नाच पूरा।
सिलें में उड़ गई, पे है! सितम है॥

ग़लत गुफ़्तम, शिकायत की नहीं जा।
मिली आ पुरुप में; अदलो-करम है॥
न कहता था तुम्हें क्या "राम" पहले।
मथाहे-ईद आई; रात कम है?॥

लोग कहते हैं कि मैदानों में रहना खूब है।
कौन जाये "राम" अब गंगा की लहरें छोड़कर॥

हर चे दर दुनियास्त बर आज़ादगाँ आमद हराम।
ख़ातिरे-जमास्त दर ज़ेरे-फ़लक सामाने-मा॥

अर्थ—जो कुछ संसार में है (अर्थात् सांसारिक वस्तु) मुक्त पुरुषों के लिये हराम है (निषिद्ध है); हमारा सामान इस आकाश के नीचे केवल चित्त की शांति (ख़ातिरजमा) ही है।

पत्र-संख्या ५

जिज्ञासु—(१) हम यह कैसे कह सकते हैं कि "इस शरीर ने यह काम किया जब कि किसी बुरा-भला सुनने से हम यह विचार करते हैं कि मैंने ही यह अपने आप को कहा है, अर्थात् दूसरे के किए हुए काम को अपना ही ख्याल करते हैं?

(२) सूर्य के प्रकाश में हम सब काम करते हैं किंतु सूर्य अपने आप कुछ काम नहीं करता। इसी प्रकार आत्मा के प्रकाश में हमारा स्थूल या सूक्ष्म शरीर सब काम करता है, आत्मा स्वयं कुछ काम नहीं करता, वरन् केवल देखता है, जैसे सूर्य समस्त संसार के कामों को देखता है, मगर अपने आप कुछ काम नहीं करता। किंतु जब हम दूसरे के काम

को अपना किया हुआ ख्याल कर लेते हैं, तो यह किस प्रकार संभव है कि देखनेवाला काम करनेवाला है ?

(३) जब हम यह कहते हैं कि इस शरीर ने यह काम किया तो स्पष्ट विदित है कि शरीर काम का करनेवाला है; परन्तु वास्तव में शरीर काम करनेवाला नहीं है, क्योंकि मरने के बाद शरीर वैसा ही रहता है; किंतु करनेवाली कोई दूसरी शक्ति उसके भीतर से निकल जाती है जिससे यह कहना भ्रमपूर्ण होगा कि इस शरीर ने यह काम किया।

ज्ञानी—सूर्य के उदाहरण में भी विज्ञान की दृष्टि से सूर्य न केवल कौतुक दर्शक है वरन् स्वयं कौतुक भी है।

स्वप्नावस्था में अपने व्यष्टि रूप से तू रंक या राव आदि बनकर देखनेवाला बना हुआ है, और अपने समष्टि रूप से सब स्वप्न का कौतुक रूप हुआ है। जाग्रत होकर जब अपने आपको ज्यों का त्यों पाता है, तो सब का सब स्वप्न अपना ही प्रकाश (ज़हूरा) दृष्टिगोचर होता है।

सूर्य आदि के उदाहरण थोड़ी दूर तक काम देते हैं, और बस। अद्वितीय स्वरूप को केवल आत्मिक अनुभव ही दिखा सकता है।

लड़का बी० ए० पास करता है। माता प्रसन्नता के कारण भूमि से दो दो हाथ ऊपर होकर चलती है, मानो उसी ने तो उपाधि प्राप्त की है। यह क्योंकर? प्रेमके कारण, यद्यपि माता का प्रेम भी प्रथम श्रेणी का नहीं होता। अब ज्ञान जो प्रथम श्रेणी का प्रेम है (एक प्रकार से वह प्रेमकी अति उत्तम अवस्था है) मनुष्य को इस योग्य कर देता है कि पृथिवी भर के व्यापार उसे अपने ही कर्तृत्व ज्ञात हों।

दो प्रकार की भ्रांतियों ने मनुष्य को घेर लिया है—प्रथम संसर्गाध्यास, द्वितीय स्वरूपाध्यास। पहले अध्यासको दूर करने के लिये इस रूप में "अहंग्रह" उपासना की आवश्यकता होती है कि मैं नाम रूप से पृथक हूँ, मैं असंग हूं, मैं कुछ नहीं करता। शरीर रूपी गंगा की चंचल तरंगों पर अपने प्रतिबिंब के कारण मैं चंचल दृष्टिगोचर होता हूँ. किंतु मैं वास्तव में डाँवा डोल होनेवाला नहीं।

इस अवसर पर बोल चाल में "इस शरीर ने अमुक काम किया, उस शरीर से यह काम हुआ" इस प्रकार के मुहाविरे बरते जायंगे। तात्पर्य यह कि "शरीर मैं नहीं हूं और न कर्मों का कर्ता हूं।" इसके बाद स्वरूपाध्यास का दमन करते समय "अहंग्रह" उपासना का यह रूप होता है कि न कोई शरीर है और न कोई काम काज आदि ही है। न यह है और न वह है। न कर्ता है और न कर्म ही है। मेरे शुद्ध स्वरूप में यह सब लोक और परलोक का सिलसिला रस्सी में सर्प के समान भ्राँति पूर्ण है। या यों कहो कि एक मैं ही मैं हूँ, कहाँ की जाति और कहां की विजाति, आदि।

संदली रंगों में माना दिल लगा।
दर्दे-सर की किसके माथे जायगी?

चंदन तो शिर-पीड़ा को हटाता है, किंतु संदली रंगों (चन्दन के रंग) के प्रेम में शिर-पीड़ा उत्पन्न होगई, यह क्या बना, यह गुत्थी किस प्रकार सुलझे? शरीर तो पहले ही जड़ था और मैं हुआ आत्मा, शुद्ध चेतन, किंतु असंग। मैं सब कामों से इनकार करता हूं, परों पर पानी नहीं ठहरने देता, कर्तृत्व का मुझमें प्रवेश नहीं और गरीब बेबस जड़ शरीर के माथे समस्त कर्मों का धब्बा जड़ना भी अत्याचार

है। अब शिर पीड़ा की (बात) अर्थात् कारोबार (व्यवहार) किसके मत्थे जायँ ?

प्रश्न—अमुक चीज़ कौन ले गया ?

उत्तर—हौवा ले गया।

प्र०—अमुक काम किसने किया ?

उ०—फ़रिश्तों ने।

प्र०—अमुक मनुष्य कहां है ?

उ०—अंधे कुएँ में।

प्र०—रोटी कहां खाई ?

उ०—ड्यूक हम्फरे (Duke Humphrey) के हां।

प्र०—अमुक वस्तु क्या हुई ?

उ०—غائب (लुप्त) हो गई। इत्यादि

ख्वाजा खिज़र का गवाह मेंढक।

सारवानों की रीति के अनुसार एक ऊँट के गले में लकड़ी का छोटा सा टुकड़ा बँधा हुआ लटकता जाता था। उसे देख ग्राम की एक लड़की ने अपनी माता से पूछा! माँ माँ! इस के गले में क्या है ?

माँ बेचारी ने लकड़ी का वैसा टुकड़ा तो एक ओर रहा, ऊंट भी नहीं देखा था, प्यार और आश्चर्य से बोली—"बच्ची! ऐसों के गले में ऐसे ही हुआ करते हैं।"

शरीर और बुद्धि जड़ और आत्मा असंग। पति (पुरुष या ब्रह्म) नपुंसक और बहू जी (माया) बाँझ!

प्यारे जब यह हाल है तो अंधेर करता है वह जो जगत् और जगत् के व्यापार को सत्य मानता है। जिस दृष्टि से आत्मा असंग है और शरीर जड़ है (इन दोनों में से एक भी

काम करने के योग्य नहीं), उस दृष्टि से काम काज ही नहीं है। "संसार ही कहाँ ? इस शरीर ने यह काम किया है" इस के यह अर्थ हैं कि जिस (Category) को शरीर belong करता है (अर्थात् जिस वर्ग वा अवस्था में शरीर सम्मिलित है) उसी (category) में काम काज आदि भी सम्मिलित हैं। तात्पर्य यह कि न काम काज ही real (सत्) और न शरीर ही सत् (real), काम काज पोपलियाना और शरीर साटकी। (ऐसों के लिये वैसे)। ज्ञान वान् रूपी सूर्य ने न कभी अँधेरा ही देखा है और न कभी उल्लू, चमगादड़ ही उसे देखते हैं।

कच्चे वेदांत और सांख्य शास्त्र के अनुसार काम-धंधे की यह व्याख्या और विवरण (explanation) किया गया है कि यद्यपि धूप और Lens (आतशी शीशा, अग्नि उत्पादक कांच) अलग-अलग कपड़े को आग लगाने योग्य नहीं हैं, किंतु दोनों मिलकर अग्नि उत्पन्न कर सकते हैं, या जैसे अंधा मनुष्य (प्रकृति, शरीर, बुद्धि) अकेला यदि चाहे तो वाटिका के वृक्षों पर से फल नहीं तोड़ सकता है, और लँगड़ा या लुंजा पुरुष (आत्मा) अकेला यदि चाहे तो वह भी वृक्ष पर चढ़कर फल नहीं खा सकता है, पर हां यदि दोनों मिलजायं और अंधे की पीठ पर लुंजा सवार हो ले, तो फल उतार सकते हैं और आनंद से खा सकते हैं, वैसे ही दोनों के संग (कुचक्र) से संसार के व्यापार का क्रम चल रहा है। पर कोई पूछे कि सूर्य और अंधकार भी परस्पर मिले हैं? हवा और मच्छरों का मेल कैसा? आत्मा से भिन्न कुछ है ही नहीं, मेल मिलाप किससे ?—

वहदत अंदर डेरा लाया। औथे ग़ैर न आया जाया।
न कोई ईश्वर न कोई माया। आपे आप न खोया पाया॥

बे शुभा जलवागर है सब जा "राम",
माहो-बादल हुआ है उसका धाम।
बल्कि है ठीक ठीक बात तो यह,
उसमें है बूदो-बाशे-आलमे-लेह ॥
वह अमूरत है, मूरती उसकी,
किस तरह हो सके ? कहाँ ? कैसी ?
कुल्ले-शयन मुहीत है आकाश,
मूरती में न आसके परकाश।
जो है उस एक ही की मूरत है,
जिस तरफ़ झाँके उसकी सूरत है।
माहो-खुरशेदो-चरख़ो-अंजुमो-नार,
जान करते हैं 'राम' पर ही निसार।
क्या हैं यह ? किस तरह हुए मौजूद ?
इक निगह पर है सब की हस्तो ओ बूद।
ख़्वाब मेरा ख़याल मेरा है,
जो ज़मीनो-ज़माँ ने घेरा है।
ख़्वाब में हैं ख़याल की दो शान,
जुज्वी, कुल्ली, "यह एक मैं", "यह जहाँ"
"मैं हूं इक मर्द" शाने-जुज्वी है,
"जुम्ला आलम" यह शाने-कुल्ली है।
मैं ही शाहिद बना हूँ, मैं मशहूद,
शान मेरी है, आसमाने कबूद।
जलवा मेरा यह अंचसाती है,
बीज माया ही फैल जाती है।
लैक माया यह आ गई क्योंकर ?
रूप-आलम सजा गई क्योंकर।
जूँ रसन में पिदीदे-सूरते-मार,

मुझ में माया नमूद है तूमार।
यह स्वरूपाध्यास है इज़हार,
जान मुझको रहे न माया यार।
फ़ितनागर आईना में चश्मे-निगार,
झूठ है, गो है यार से दो चार।
यह जो संसर्ग से हुआ अध्यास,
सानी यकता को ला दिखाया पास।
माया आईना जैसी ख़ुरसंद है,
मज़हरे-'राम' सच्चिदानन्द है।
मिहर शाहिद कहीं न हिलता हैं,
शीशे हिलते हैं, यूँ वह फिरता है।
कुछ नहीं काम रात दिन आराम,
काम करता है फिर भी सब में 'राम'
दाना ख़शख़श का एक बोया था।
बाबा आदम ने इब्तिदा में ला।
एक दाने में ज़ोर यह देखा,
बढ़ गया इस क़दर, नहीं लेखा।
इस क़दर बढ़ गया, फला फैला,
जमा करने को न मिला थैला॥
एक दाना हक़ीर छोटा सा,
अपनी ताक़त में क्या बला निकला।
आज बोने को दाना लाते हैं,
उस की ताक़त भी आज़माते हैं।
यह भी ख़शख़श ही का दाना है,
यह भी ताक़त में क्या यगाना है।
हू वह है वही तो इस में भी,
शक्ति आदम के बीज में जो थी।

सच बताएँ, है यह वही दाना,
न यह फैला हुआ न दो गाना।
ग़ौर से देखिए हक़ीक़त को,
नज़र आता है बीज क्या तुमको।
मेरे प्यारे! तू ज़ात-वाहिद है,
तेरी कुदरत अगरचे बेअद है।
जान नन्ही को जबकि साँइसदाँ,
तजरुबे को है काटता यकसाँ।
जिस्म गो हो गया हो दो टुकड़े,
लेक मरते नहीं वह यूँ कीड़े।
पेशतर काटने के एक ही था,
जब दिया काट, दो हुए पैदा।
दोनों वैसा ही ज़ोर रखते हैं,
जैसे वह कीड़ जिस से काटे हैं।
क्या दिखाता है खोलकर यह बात,
काटने में नहीं है आती ज़ात।
एक शीशे में एक ही रू था,
शीशा टूटा अदद बढ़ा रू का।
ज़ैद हो, बकर हो, उमर ही हो,
मज़हरे-"आदमी" है कोई भी हो।
गो है नक़्रे का मारफ़ों में ज़हूर,
नाम रूपों में है यही भरपूर।
पर यह नक़रा वज़ाते-खुद क्या है?
इस में हिस्सों का दख़्ल बेजा है।
इस्म फ़रज़ी शक्ल बदलती है,
पर जो तू है सो एक रस ही है।
तू ही आदम बना था तू हव्वा।

ज़ात तेरी ही एक थी उस जा ।
तू ही था 'राम' तू ही था 'रावन'
तू ही था वह गडड़िया वृंदावन ।
झूठ तुमको सनम न ज़ेबा है,
तू ही मौला है, छोड़ दे "है है",
सीमबर का वह चाँद सा मुखड़ा,
तेरा मज़हर है, नूर का टुकड़ा ।
दिल जिगर सब का हाथ में है तेरे,
नूर-मौफ़ूर साथ में है तेरे ।

पत्र-संख्या ६

मेरे अपना आप !

क्या ठीक लिखा है—"ज़रा अपने शीशए-दिल में तो झाँक लिया होता ।"

वस्तुतः यही बात है । सच पूछो तो दिखावे का पत्र-व्यवहार एक निकम्मी लीला है । हज़ारों कोसों पर बैठे हुए महाशयों के हृदयों की दशा हस्तामलक की तरह दृष्टिगोचर हो जाती है ।

बख़्वाबे-खुद दर आ, ता क़िबलए-रुहानियां बीनी ।

अर्थ-तू अपनी नींद में आ (अर्थात् अपने भीतर देख) जिसमें तू फ़रिश्तों का क़िबला (देवलोक) देखे ।

दिल के आईने में है तसवीरे-यार ।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली ॥

पीतम पतियाँ तब लिखूँ जब तुम बसो विदेश ।
मन में तन में जान में वाको क्या संदेश ।

हवाख़्वाह-तो अम जानाँ व मेदानम कि मेदानी।
कि हम ना दीदा मेदानी व हम ननाविश्ता मेख़्वानी।

२ गर्चे दूरेम बयादे-तो क़दह मे नोशेम।
बोदे-मंज़िल न बुवद दर सफ़रे-रूहानी॥

अर्थ-(१) ए प्यारे! मैं तेरा शुभचिंतक हूँ और मैं यह भी जानता हूँ कि तू इस बात को जानता है, क्योंकि तू बिना देखे के जान लेता है और बिना लिखे के पढ़ लेता है।

२ यद्यपि हम दूर हैं किन्तु तेरे स्मरण में प्रेम का प्याला पीते हैं, क्योंकि इससे आत्मिक यात्रा में विश्राम की दूरी मालूम नहीं होती।

पत्र-संख्या ७

अभ्यास के संबन्ध में

बिलकुल एकांत में बैठकर ओम् गाते जाओ और हृदय-दर्पण में एक-एक करके उन सब महाशयों को उतारो जो आप से किसी प्रकार की शत्रुता रखते हों, या थोड़े बहुत रुष्ट रहते हों। उनको अपने अंतःकरण के गम्भीरतल से आशीर्वाद दो, उनका भला चाहो, और अत्यन्त प्रेमसे अपनी परम प्रिय वस्तुएँ उनकी सेवा में उपस्थित कर देनेको तत्पर हो जाओ। उनके साथ "मन तो शुदम तो मन शुदी=मैं तू हुआ और तू मैं हुआ=यूयं वयं वयं यूयम्" का भाव कर दो, क्रोध और गिल्ला बिलकुल क्षमा। रूठे मनाये गए।

गर ज़ दस्ते-ज़ुल्फ़े-मुश्कीनत ख़ताए रफ़्त रफ़्त।
वर ज़ हिंदूए-शुमा बर मा जफ़ाए रफ़्त रफ़्त॥
गर दिले अज़ ग़मज़ए-दिलदार बारे बुर्द बुर्द।
दरमियाने जानो जानाँ माजराए रफ़्त रफ़्त॥

अर्थ-यदि तेरी मुश्की जुल्फ़ (माया) से कोई अपराध हुआ, तो क्षमा किया गया और यदि तेरे (मुखमंडल के काले) तिल से हमारे ऊपर कोई अत्याचार हुआ, तो वह भी भुलाया गया। यदि हृदय ने प्रियतम के संकेत से कुछ बोझ उठाया तो सह लिया गया; प्रेमी और प्रेमपात्र के बीच में यदि कोई भी बात हुई, तो वह भुलाई गई, भुला दी गई।

नखों से मांस पृथक नहीं हो सकता। यद्यपि ऊपर से वह क्लेश देते हों, किंतु हैं तो तुम्हारा खास अपना आप। वह इस बात से अनजान हैं तो क्या? आप तो सच्चे संबंध से अनजान नहीं। जैसे अपने बच्चों को लोग बिना किसी बदले की दृष्टि से प्यार करते हैं, वैसे ही तुम भारतवर्ष की मिट्टी तक को प्यार किए बिना रह न सको। प्रत्येक के दोषों को उसी दृष्टि से देखो जैसे अपने छोटे बच्चों के खेलों को देखते हो। बंदरों से अधिक तंग करने वाला बेसमझ और कष्ट पहुँचाने वाला भी किसी ने होना है? किंतु प्रीति के बल से "राम" ने उनको अपनी सेना बना लिया। पुराणोंमें लिखा है, जो मनुष्य भगवान् से वैर और घोर शत्रुता करने की राह पर चले थे उनका अपेक्षाकृत बहुत शीघ्र कल्याण हुआ और वे मुक्त हुए। प्यारे! निस्संदेह वह व्यक्ति अवतार ही है जो शत्रुओं को सब से पहले अपना धाम आदि देने को उपस्थित खड़ा है। प्यारे! सच्ची प्रीति और प्रेम (जिससे सर्वत्र अपना आप ही दृष्टिगोचर होता है) जब आता है, तो अंधे को आँखें मिल जाने की तरह होता है। संसार ही और हो जाता है। चहुँ ओर पुष्पोद्यान खिल जाते हैं। स्वर्ग ही स्वर्ग हो जाता है।

नेकी सदा किया कर उसकी बदी के बदले।
क़तले-अदू के क़ाबिल शमशेर है तो यह है॥

मुबारक बाद्त पे दिल ! गश्त बीना दीदए-कोरत ।
नुमायाँ शुद . ब हरसू सूरतें-यार-निको सीरत ॥

अर्थ-ऐ दिल ! तुझको मुबारक (धन्यवाद) हो कि तेरी अंधी आँख देखने वाली होगई, और अब शुद्ध अन्तःकरण सुहृद (मित्र) का स्वरूप चहुँ ओर प्रकट होने लग पड़ा है ।

जो व्यक्ति धन, तन और मन से हार्दिक संबंध तोड़ बैठता है, और जैसे पहले एक विशेष शरीर को अपना समझता था, वैसे ही अब प्रत्येक शरीरको बिलकुल (अपना आप) जानता है, वह धीरे-धीरे सब के हृदयों से जानकर होने की सिद्धि को प्राप्त होगा, आत्मप्रकाशता के लिये यह एक आवश्यक अंश है । प्रेम और आनन्द में रसरत्ता और मग्नमत्ता फिरने वाले के मन और प्राण से इस प्रकार के गीत निकलते रहते हैं । दफ़्तर में, बाज़ार में, घर में और बाग बगीचे में जादूभरी प्रेम-दृष्टि वाला अपनी जिह्वा से यह गाता फिरता है ।

न दुशमन है कोई अपना न साजन ही हमारे हैं ।
हमारी ज़ाते-मुतलक़ से हुए यह सब पसारे हैं ॥
न हम हैं देह मन बुद्धी नहीं हम जीव न ईश्वर ।
बले इक "कुन" हमारी से बने यह रूप सारे हैं ॥
हमारी ज़ाते-नूरानी रहे इक हाल पर दायम ।
कि जिसकी चमक से चमकें यह मिहरो-मह सितारे हैं ॥
हर इक हस्ती की है हस्ती, हमारी ज़ात पर क़ायम ।
हमारी नज़र पड़ने से ही नज़र आते नज़ारे हैं ॥
बरंगे-मुखतलिफ़ नामो-शकल जो दमक मारे है ।
हमारे तूर के शोले से उठते यह शरारे हैं ॥

माशूक क़द दरख्तों पै बेलों का हार है।
नै, नै, ग़लत है जुल्फ़ का पेचाँ यह मार है॥
वाह वा सजे सजाए हैं कैसा शृंगार है।
अशजार में चमकता है खुश आबशार है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है।

अशजार सर हिलाते हैं क्या मस्तवार हैं।
हर रंग के गुलों से चमन लाला ज़ार है॥
भौंरे जो गूंजते हैं पढ़े ज़र निगार है।
आनंद से भरी यह सदा ओंकार है॥
आ देख ले बहार कि कैसी बहार है!

गंगा के रू सफ़ा से फिसलती न गर नज़र।
लहरों पै अक्स मिहर का क्यों बेकरार है॥
विष्णु के शिव के घरका असासा यह गंग है।
याँ मौसमे-खिज़ां में भी फ़सले-बहार है॥
आ, देख ले बहार कि कैसी बहार है!

Say peace to all from me no danger be
To aught that lives. In those that dwell on high,
In those that lowly creep. I am the Self of all.
All life both here and there do I renounce,
All heavens, earths and hells, all hopes & fears.
Thus cut thy bonds, Sannyasin bold! say,
Om tat sat, om!

अर्थ—सब को मेरी ओर से शांति कह दो। मुझसे

किसी को चाहे वह इस संसार के हों अथवा परलोक के हों, किसी प्रकार का भय नहीं, और न भूमि के कीड़ों-मकोड़ों को ही मुझसे भय है। मैं सबका अपना आप (आत्मा) हूं। मैं यहां और वहां (लोक और परलोक) के समस्त जीवन को, स्वर्ग, नरक और संसार की समस्त उमंगों और चिंताओं को बिलकुल त्यागता हूँ। ऐ बहादुर संन्यासी! इसी प्रकार से अपने बंधनों को तू काट डाल, और ॐ तत् सत् ॐ तत् सत् का जाप कर।

जिस बात से कभी मनमें उदासीनता या अशांति आवे उस बात की कामना ही मिटा देना आनन्द का द्वार है।

जब ओढ़नी नहीं लोई, तब क्या करेगा कोई।

श्याम तन, श्याम मन, श्याम ही हमारो धन, ?
श्याम बिन काम कोऊ कैसे बन आवे है ?

हरि सँग ब्याह रचो रंग रँगना (टेक)।
आओरे बम्हना, बैठो मोरे अँगना।
खोलो रे पोथी, देखो मोरे लगना॥
हरि संग ब्याह, हरी सँग सँग ना।
हरि सँग मँगनी, हरी सँग गमना॥
हरि संग ब्याह०—

पत्र-संख्या ८।

आज प्रातः लगभग २ बजे के निकट असंप्रज्ञात समाधि के कैलाश से बासंती वायु का झोंका आया था। वह हर्षजनक शुभ समाचार के रूप में "कृष्ण" की मोहर के साथ गंगाजल से लिखकर रवाना किया गया। आज सायंकाल

रिम झिम वर्षा हो रही थी। "राम" के शुद्ध सतोगुणी मंदिर के आंगन में अग्निकुंड के चतुर्दिश "नारायण" "मदनमोहन" और "तुला-राम" बैठे नित्य-नियमानुसार उच्च स्वर से अंतःकरण से आँसू बहाते हुए यह वेदमंत्र बेर-बेर गा रहे थे

तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा, स मा भग प्रविश स्वाहा।
तस्मिन सहस्र शाखे निभगाहं त्वयि मृजे स्वाहा॥

तात्पर्य—"हे ॐ! हे परमात्मा! तू हमें अपने स्वरूप में प्रविष्ट हो जाने दे, स्वाहा! तू हमारे रोम-रोम में प्रविष्ट हो जा. स्वाहा! दुःख देनेवाली भेद-बुद्धि हज़ारों जोखिमों में डालती है। मैं तेरे स्वरूप में मल-मल नहाता हूँ और यह मैल धो धो कर उतारता हूँ! स्वाहा!

फिर "ॐ ॐ" की ध्वनि परमानंद के स्वर में कुछ देर होती रही। फिर अपने आप आँखें मिच गईं और सब प्रणव में लीन। बहुत देर यह शांति की अवस्था रही। इस के बाद गीता पढ़ाई गई ("क्षर और अक्षर दोनों से श्रेष्ठ मैं हूँ"-अध्याय १५ वां समाप्त)

इस समय सब अपनी अपनी कुटिया में हैं। राम एकान्त बैठा है। पूर्णिमा की चाँदनी चटक रही है। यहाँ से बादलों के टुकड़े, घर की फुलवारी और सामना पर्वत ज्योत्सान में स्नान किये प्रतीत हो रहे हैं। गंगा-रानी का मधुर गायन कर्ण कुहरों में पवित्रता भर रहा है। गंगाजी क्या गा रही है।

जाग मोहन जाग रे बल गई।
उठो जागो, खाओ माखन, फेर डारो रई॥
रात भारी गई सारी भोर अब तो भई।
चिड़ी पंछी हैं बुलावत, खेल उन से सही॥

तात्पर्य—ऐ प्यारे भारतवर्ष (मोहन=कृष्ण=काला=हिंद) अब जागो। अविद्या की नींद बहुत सोए। मैं बलिहार ! अब बैठे हो जाओ। होशियार बनो। संसार रूपी गाय का मक्खन (सत्-सार) खा लो, अपने भीतर प्रविष्ट कर लो; अथवा यों कहो कि श्रुति (वेद) रूपी कामधेनु का मक्खन अर्थात् महा वाक्य मुँह में डाल लो। यह शक्ति (सत्) भरा श्वेत श्वेत (ज्ञान, चित्) मीठा-मीठा (आनंद स्वरूप) मक्खन (तत्त्व-ज्ञान) चख लो, बड़ा बल आ जायगा, शक्ति भर जायगी।

गोवर्धन (संसार की कठिनाइयाँ-गुत्थियाँ) उठाना वायें हाथ का कर्तव्य नहीं, चटली अँगुली का खेल हो जायगा। हे दामोदर ! कमर की डोरियाँ, रस्सियाँ (देश, काल, वस्तु-परिच्छेद) को तोड़ना कुछ बात ही न रहेगी। काली नाग के समस्त फनों (मन और अहंकार की समस्त वृत्तियां) को पैर के तले कुचलना सरल हो जायगा। यह माखन (वेदांत) सब अवयवों (पट्ठों) को पुष्ट और हड्डियों को लोहे के समान कठोर और मुखमंडल को दीप्तमान कर देने वाला है। फुफ्फुसों (फेफड़ों) में बल भर देगा। जादू भरी बांसुरी बजाते बजाते कभी थकने ही न पाओगे।

वह देखो, नन्हां कृष्ण (भारत) जाग पड़ा। ऊँ ऊँ ऊँ नहीं, ॐ ! ॐ !! ॐ !!! मैया (सतोगुण का प्रवाह=गंगा) ने बिसूरते हुए अधरों को तनिक माखन लगा दिया (सोऽहं), मुँह में आहुति पड़ गई (शिवोऽहं)। पच-पच करते हुए माखन खाने लगे (ब्रह्मास्मि)। माता कुछ देर अपने हाथ से मक्खन खिलाकर अपने धंधे में लगती है, वही विलोना आरंभ करती है, रई डालती है अर्थात् नई शताब्दी आरंभ होती है। संकल्प की रई पड़ी है। काल (समय) का नेत्रा, (रई की रस्सी) है। कभी

इधर खिंच आता है (दिन), कभी उधर खिंच जाता है (रात)। बिलोना आरंभ होगया। रड़, रड़, रड़ आरंभ हो गई। ऐ माता! अब इस कृष्ण को माखन की चाट लग गई।—

छुटती नहीं यह ज़ालिम मुँह को लगी हुई।

"माखन भूख (अहंग्रह उपासना) घनेरी री मैया! माखन भूख घनेरी", ऐ प्रकृति (दुन्या) यह माखन चोर तुझे कब चैन से बिलोने देगा? रई तोड़ेगा और नाम रूप की मटकी फोड़ेगा। रात बीत चुकी, पौ फटने लगी, प्रकाश का प्रभात है। पक्षी कबूतर मयूर आदिक तो सब जाग पड़े, कृष्ण अभी सोया ही पड़ा है, कुछ हरज नहीं। पक्षी आदि तो सदैव पहले ही जागा करते हैं।

ऐ मोहन (भारत)! यह पक्षी गा गा कर तुझे जगाया चाहते हैं। कल की तरह (प्राचीन कालानुसार) अब भी तेरे हाथों दाना चाँवल तिल आदि खायेंगे। ऐ प्रेम भरे बाल गोपाल! तेरे साथ खेलने को यह पक्षी जमा हो रहे हैं, तेरे मनो मोद (दिललगी) के सब सामान तैयार हैं। उठ! खड़ा होजा! चिड़ियां चूँ चूँ कर रही हैं। कौवे कायँ-कायँ छेड़ रहे हैं, मोर म्यों म्यों कूक रहे हैं [कोई किसी बाहरी कला के पीछे पड़ा है, कोई किसी शारीरिक सुख में अड़ा है, कोई स्थूल विज्ञान में उलझा है। यह सब इन्द्रियों तक पहुँचने वाली रागनियां जारी हैं।

हे भगवन् (भारत)! यह सब केवल तेरे जगाने के समान हैं। नींद में भी विचित्र आनन्द था। पर अब तो खूब सो लिए। ताज़ह हो चुके। मचलते क्यों हो? तुमभी गाओ।

यह देखो तुम्हारी बाँसुरी कौन चुरा ले गया?
नहीं-नहीं, तुम्हारे ही पास है।

अहा हा हा ! वह भारत ने सूर्य के समान आँखे खोली। अधरों पर बाँसुरी रक्खी, और हृदय में समा जाने वाली आत्मिक ध्वनि वायु के पर्दे पर सवार हो चारों ओर गूँजने लगी, समस्त गोकुल (समस्त संसार) में फैलने लगी। आकाश की खबर लाने लगी। जय, जय, जय।

अब चूँ चूँ, प्यों प्यों, काएँ काएँ किसको भाने की है?

पत्र संख्या ६

विचार तो यह था कि

"नंगे उमर बिताएँगे, आनन्द की झलक दिखायँगे।
रूखी रोटी खायँगे, मस्त पड़े रह जायँगे।
सूखे टुकड़े खायँगे, 'सोऽहं' हम सो गायँगे।"

किंतु मेवे पेड़े पीछा ही नहीं छोड़ते। हर समय सेवा में उपस्थित खड़े रहते हैं। इन तीनों पद्यों के दूसरे पाद सब ठीक लेकिन पहले गलत निकले। जंगलों में भी मंगल ही मंगल देखे।

आसन जमाए बैठे हैं दर से न जायँगे।
मजनूँ बनेंगे हम तुम्हें लैली बनायँगे॥

कफ़न बाँधे हुए सिर पर तिरे कूचे में आ बैठे।
न उट्ठेंगे सिवा तेरे उठा ले जिसका जी चाहे॥
मुबारक है यह रुसवाई, अये! हट दूर हो शुहरत।
हज़ारों ताने अब हम पर लगा ले जिसका जी चाहे॥

बैठे हैं तेरे दर पै तो कुछ कर के उठेंगे।
या वस्ल ही हो जायगी या मर के उठेंगे॥

गर हमने दिल सनम को दिया फिर किसी को क्या?
इसलाम छोड़ कुफ़्र लिया फिर किसी को क्या?

हमने तो अपना आप गिरेवाँ किया है चाक ?
आप ही सिया, सिया, न सिया फिर किसी को क्या ?

बनागह, आँ शकरलब रा लबे-शहदश व बगज़ीदम।
कि ता रोजे-अबद नरवद हलावातश ज़ दंदानम ॥ (१)

गर तबीबे रा रसद ज़ीं सां जुनूँ।
दफ़्तरे-तिब रा फ़रोशोयद ब खूँ ॥ (२)

मन बेखुदो शैदायम क़ल्लाशम-व-रुसवायम।
हर जाई व बेजायम हज़ा जनून उल आशक़ीन् ॥ (३)

अर्थ मैंने अचानक उस मधुर अधर वाले के मधु के समान मधुर अधरों का चुंबन किया (दांतों से काटा) जिसमें सदैव के लिये मेरे दाँतों से उनकी मिठास न चली जाय। १

यदि हकीम हमारे इस तरह के (सच्चे) पागलपन से जानकार हो जाय, तो हिकमत के सारे दफ़्तर को खून से धो देवे। २

मैं बेखुद (अहंभाव शून्य) आशिक़ (प्रेमी) हूँ, कंगाल और बदनाम हूँ, घर और बेघर हूँ, और इसी तरह आशिक़ों का पागलपन हूँ।

नोट—माशूक़ (प्रेम पात्र), लैली, ब्रह्मविद्या=आहंग्रह उपासना है। साधक लोगों के लिये ऐसे पद्य बहुत उपयोगी होते हैं।

पत्र संख्या १०

जिज्ञासु—इस *रिसाले के पृष्ट (११३) पर बुद्धि की निम्नलिखित प्रशंसा की गई है—

खिरद रा दोश मी गुफ्तम कि ऐ अकसीरे-दानाई।
हमत बे मग़ज़ हुशियारी, हमत बेदीदा बीनाई॥ (१)
चे गोई दर वुजूद आँ कीस्त कीं शायस्तगी दारद।
कि तो बा आबे-रूए-ख्वेश खाके-पाए ओ साई॥ (२)

अर्थ-कल रात मैं बुद्धि से कहता था कि ऐ ज्ञान की रसानय! तेरा समस्त चातुर्य बिना मस्तिष्क के है, और तेरा समस्त देखना बिना आँखों के है। (१)

तू बतला कि इस शरीर में वह कौन है कि जिस के पैरों की धूल को तू अपने मुख मंडल की कांति पर मलती है (या घिसती है)। (२)

किन्तु वहां बुद्धि की ओर से कोई उत्तर नहीं है।

राम—बुद्धि का उत्तर यों है।

बगुफ्ता "नूरे-मन कज़ वहरे-ओ पैवस्ता मे सोज़म
चो रुख़ बिनमूद जाँ दर बाख़्तम, अकनूँ चे फ़रमाई?"

अर्थ-उस (बुद्धि) ने कहा कि मेरा प्रकाश जिससे कि मैं सदैव जलती हूँ (अर्थात् प्रकाशमान हूँ) जब वह प्रकट हुआ, तो मैंने अपने प्राण (अस्तित्व) को उस पर वार डाला, अब तू क्या पूछता है?

---

*यहां पृष्ट ११२ से अभिप्राय उर्दू रिसाला अलिफ का पृष्ट है जो खुमखाना-ए-राम अर्थात् कुल्याते-राम की प्रथम जिल्द के अन्तर्गत है। पर यह विषय ग्रन्थावली के भाग चौदहवें के पृष्ट १५१ पर भी दर्ज है, वहां देखो।

तात्पर्य—(१) सारी रात शमा (मोम बत्ती) जलती है, किसके प्रकाश से ? सूर्य के (क्योंकि तेल और लकड़ी आदि में सूर्य से मांगा हुआ तेज और प्रकाश होता है), (२) जब तक सूर्य को शमा नहीं देखती, मानो उसके वियोग में जलती है। और दीप्तमान दिवाकर के प्रेम में "जलना" ही "प्रकाशमान" होना है। किंतु आनंद यह कि जिसके प्रेम में जलती थी, जब उसके दर्शन होते हैं तो स्वयं नहीं रहती। देख लो, सूर्य के निकलने पर भी दीपक कभी जला करता है ? अब बुद्धि रूपी शमा यह कहती है कि जिसके विषय में तुम पूछते हो, उसे देखना तो मुझे नसीब नहीं होता, मैं बताऊँ क्या ? और तुम पूछते क्या हो, और प्रश्न किससे करते हो।—

मन शमा जाँ गुदाज़म तो सुबहे-दिलकुशाई।
सोज़म गरत न बीनम, मीरम चो रुखनुमाई ॥ १ ॥
नज़दीकत ईं चुनीनम दूर आँ चुनाँ कि गुफ्तम्।
ने ताबे-वस्ल दारम, नै ताक़ते-जुदाई ॥ २ ॥

अर्थ—मैं जान पिघलाने वाली (अर्थात् अपने आपको न्यौछावर करनेवाली) शमा हूँ, और तू दिल को खिलाने वाली (अर्थात् दिल को खुश करनेवाली) प्रभात है, यदि मैं तुझको न देखूँ तो जलती रहती हूं, और जब तू अपनी सूरत दिखलाता है, तो मैं मर जाती हूं (अर्थात् प्रभात होते ही शमा बुझ जाती है, इस लिये मैं तेरे मुख दिखाने पर तत्काल लुप्त प्राय होती हूँ)। (१) मैं इस तरह, तेरे निकट हूँ, और उस तरह पर जैसा कि मैंने कहा, मैं तुझसे दूर हूं। न मैं तेरे मिलाप की शक्ति रखती हूँ और न वियोग की ही शक्ति है।

अलीपुर सय्यदाँ, ज़िला स्यालकोट, साईं दीनमोहम्मदजी को यह बातें लिख देना।

(१) संसर्गाध्यास और स्वरूपाध्यास के संबंध में गंगा-तरंग और कैलाशकुक में पर्याप्त (काफी) व्याख्या हो गई है।

(२) "जब भूख लगना, सो जाना आदि कर्म खुल्लम खुल्ला मालूम होते हैं, तो क्योंकर प्रतीति हो सकता है कि ये असत् हैं?"

"यह कर्म किसको सत्य प्रतीत होते हैं?" बुद्धि को। आप कौन हैं? क्या आप बुद्धि हैं?—कदापि नहीं।

जब तक बुद्धि के साथ ऐसा जोड़ रहता है कि मानो बुद्धि ही मैं हूँ, तब तक सब कर्म और कर्म-फलों को वह सच्चा मानता है। जैसे स्वप्न में स्वप्न-शरीर को जब तक अपना आप मानता है, तब तक स्वप्न की समस्त बातों को सच मानता है। ज्यों ही स्वप्नावस्था के अपने कल्पित शरीर से संबंध विच्छेद करता है और जागकर अपने अपेक्षाकृत सच्चे शरीर को देखता है, तो स्वप्न के कर्तृत्व और चेष्टाएँ, कर्म और कर्म-फल को भी असत् प्रतीत करता है। अन्वयव्यतिरेक की रीति से अपने असली स्वरूप में जागने वाला और बुद्धि तथा शरीर से संबन्ध तोड़ने वाला खुल्लम-खुल्ला सब कर्मों तथा कर्म-फलों को असत् देखता है। सप्ताहों के सप्ताह "राम" पर ऐसे आने लग पड़े हैं कि कई कर्म शरीर से हो जाते हैं, किंतु बिलकुल बेहोशी में। संसार का स्वप्न होना प्रत्यक्ष प्रतीत होता है।